॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—२१ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—१-४

श्रील रूप गोस्वामीका अवदान वैशिष्ट्य

• स्तवमाला • गुरुवर्गका वाणी-वैभव • श्रील गुरुदेवके वचनामृत

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज
श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त जनार्दन महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भारती महाराज
श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी, श्रीमती वृन्दा(वन्दना) दासी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल— श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीसुबलसखा दास, श्रीप्रेमदास

ले-आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीभक्तबान्धव कृष्णकारुण्य महाराज

कार्यकारी सहायक—पूजा दासी, गौरराज दास, केशव दास,
सुशीलकृष्ण दास, गौरप्रिया दासी, शचीनन्दन दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

वर्ष २१

श्रीगौराब्द – ५३९
वि. सं. – २०८२; विष्णु-वामन मास ; सन् – २०२५ (१५ मार्च – १० जुलाई)

संख्या १–४

विषय-सूची

'स्तव-वैभव'

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत वस्त्रहरण लीला..... २
—श्रील रूप गोस्वामी

गुरुवर्गका वाणी-वैभव

जीवके प्रति उपदेश................................ ६
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप ९
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

विज्ञान-शब्दका वास्तव अर्थ १३
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका इकतीसवाँ वर्ष १५
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवके वचनामृत

श्रील रूप गोस्वामीका अवदान वैशिष्ट्य १९
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

धारावाहिक

श्रीगौराङ्ग-सुधा.. ३४

हरे कृष्ण हरे कृष्ण
कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम
राम राम हरे हरे ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक
श्रीश्रील रूप गोस्वामी प्रभुके द्वारा प्रणीत

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत

(वर्ष-२०, संख्या ५-१२ से आगे)

अथ वस्त्रहरणं।

श्रीवल्लवेन्द्रनन्दनाय नमः॥
वन्याश्रिता मुरारिः कन्याः सन्यायमुन्मदयन्।
अन्याभिलाषितां ते धन्यार्पिता सौहृदोहन्यात्॥ १॥

हे मानस! जो यमुनाजलमें विहार करनेवाली गोपकुमारियोंका यथेष्ट आनन्द वर्धन करते हैं और जो कन्याकुलमणि श्रीमती राधिकाके प्रेममें परितृप्त हैं, वे मुरारी तुम्हारी विषय-तृष्णाओंको दूर करें॥ १॥

सहसि व्रतिनीरभितः कृतिनीर्गिरिजा स्तवने सलिलाप्लवने
कलितोल्लसनाः किलदिग्वसना-स्तटभाक्पटिका रसलम्पटिकाः
स्फुटबाल्ययुताः पशुपालसुताः कुतुकी कलयन्मतिमुल्ललय-
न्नुपगत्य मनोभववत्कमनो हृतवान् सिचयान् सुहृदां निचया-
न्तरगस्तरसा प्रियकं स्वरसादधिरुह्य नगं तटकाननगं।
कृपया स्नपयन्नथ तास्त्रपयन् पृथुलांसतटी-धृतधौतपटी-
पटलोहसित प्रभयोल्लसितः शृणुत प्रमदा गिरमश्रमदा-
मुपगत्य हितामभितः सहिता यदि वा क्रमतः स्फुट विभ्रमतः
सिचयान्नयत च्छलनं न यतः।
कथितं न मया जनुषः समयादनृतं ललिता यशसोज्ज्वलिता
विदुरिन्दुहृदस्तदमी सुहृदस्तनवै न हसा दुदितं सहसा
बत यूयमिता व्रततः श्रमिता इति सङ्कथयन्पटुतां प्रथय-

न्नतिचञ्चल हे विशमाकलहे वितराद्यपटं कुरु मा कपटं
करवाम सदा वचनं रसदास्तव दास्यपरा न वयं त्वपराः।
नहि चेद्रचितं निखिलं चरितं खलु राज्ञि तव प्रबले कितव
प्रवदाम मदोद्धत घोरमदो वचनं च रुषा प्रसरत् परुषा-
क्षरमित्युदितं समृषा रुदितं जड़ता कलिले यमुनासलिले
विलसद्वपुषां गुरुकम्पजुषां चलचारुदृशां बहुधा सुदृशां
निशमय्य ततः प्रणयी सतत-स्मित चन्द्रिकया स्फुरितोऽधिकया।
यदि यूयमृते मम वागमृते भवथ ग्रहिला नियतं महिला
उपसृत्य ततः प्रियकात्पततः सपटी पदकान्स्वपरिच्छदका-
नुररीकुरुत प्रमदाद्भुरुत-स्त्यजतोनुचितं हृदि संकुचितं।
नहि चेन्नितरां न पटान्वितरा-म्युरुवीर्यचये मयि किं रचये-
न्नृपतिः परितः सरुषा भरितः स्फुटमित्यमलं निगदन्कमलं
भ्रमयन्नुदितः शशिवन्मुदितः।
स्वकराम्बरिणीरथ ताहरिणीनयनाः कलयन् सशिरश्चलयन्
बत नग्नतया स्पृहयोन्नतया जलमज्जनतः कृतवर्जनतः
कपतेर्जनिता लघुता वनिता-स्तदलं दुरित क्षतये स्फुरित-
द्युतिसुन्दरयोर्युगलं करयोः शिरसि प्रयता द्रुतमर्पयता-
रुणमित्यधुना निजवाङ्मधुना परिलभ्य मदं हृदि विभ्रमदं
किरतीभिरलं नयनं विरलं रचिताञ्जलिभिः प्रमदावलिभिः
प्रणतोमधुरः कृतकामधुरः सुभगङ्करणं वसनाभरणं
विहितानतये ललनाततये दददङ्कुरित प्रणयच्छुरितः
परितोहृषिते मदनोत्तृषिते त्रपया नमिते प्रियसङ्गमिते
नवरागधरे द्युतिभागधरे हसिताङ्कुरतः स्फुरिते पुरतः
स्थगिते रसना विलसद्वसना कुलिते पृथुना स्फुट वेपथुना
चलदग्रकरे प्रमदाप्रकरे विहितेष्टवरः प्रणयिप्रवरः
सुतरां सुखिभिर्वलितः सखिभि-र्बहुधा खुरली विलसन्मुरली-
नवकाकलिकालिभिरुत्कलिका कुलमुन्नमयन्सुदृशां रमयन्-
धिमुन्मदनः कृपया सदन प्रहित प्रमदः कलित प्रमदः
कुसुमस्तवकं श्रवणे नवकं दधदाभरणं जगतां शरणं
जयकेशिहर प्रमणा विहर त्वमति प्रणयं स्वजने प्रणयन्
मयि दुर्हृदये भगवन् विदये कलयेररुणाधर हे करुणाम्॥
यस्य स्फूर्ति लवाङ्कुरेण लघुनाप्यन्तर्मुनीनां मनः
स्पृष्टं मोक्षसुखाद्विरज्यति झटित्यास्वाद्यमानादपि।
प्रेम्णस्तस्य मुकुन्द साहसितया शक्नोतु कः प्रार्थने
भूयाज्जन्मनि जन्मनि प्रचयिनी किन्तु स्पृहाप्यत्र मे॥ २॥

एक समय आपमें एकान्त चित्तवाली, कैशोर-अवस्थायुक्त व्रजसुन्दरियाँ अग्रहायण मासमें कात्यायनी व्रतके उद्देश्यसे यमुनाके तटपर अपने वस्त्रोंको रखकर निर्वस्त्र अवस्थामें और निर्भीक मनसे स्वच्छन्द रूपसे यमुनामें जल-क्रीड़ा करने लगीं। तभी कन्दर्पकी भाँति रमणीय आप कौतुक करनेके उद्देश्यसे वहाँ आये और उन कन्याओंके समस्त वस्त्रोंको हरण कर लिया और तत्क्षणात् समान आयु वाले गोपबालकोंके[१] बीचमें अलक्षित रूपसे प्रवेश करके आपने शीघ्रतापूर्वक यमुनातीर स्थित एक कदम्ब वृक्षके ऊपर आरोहण किया।

अनन्तर वस्त्रहरणके छलसे उन व्रजसुन्दरियोंके ऊपर अनुग्रह करके उन उत्तम-उत्तम सभी वस्त्रोंको अपने उन्नत स्कन्धपर धारण करके मन्द-मन्द हँसते हुए आप उनसे बोले—'हे आनन्दमें प्रमत्त सुकन्याओ! यदि तुम्हारी अपने वस्त्र प्राप्त करनेकी इच्छा है तब मेरे मङ्गलजनक वचनोंको सुनो। तुम सभी एक साथ मिलकर अथवा एक-एक करके मेरे निकट आकर अपने वस्त्रोंको ग्रहण करो। मैं तुमसे कोई छल अथवा परिहास नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि जन्मसे ही मैंने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा है। हे गोकुलसुन्दरीगण! यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मेरे इन सब मित्रोंसे मेरे चरित्रके विषयमें जिज्ञासा करो, तब तुम मेरे विषयमें यथार्थरूपसे जान पाओगी। तुम सभी कात्यायनी व्रतमें दीक्षित होकर यमुनामें स्नान कर रही हो, ऐसे समयमें मैं तुम्हारे साथ क्यों परिहास करूँगा?'

हे श्रीकृष्ण! आपने व्रजगोपिकाओंको कृपाभिषिक्त और लज्जायुक्तकर उस समय ऐसी वचनभङ्गिमाको प्रकाशित किया। तत्पश्चात् व्रजकुमारिकाएँ कहने लगीं, —'हे चपल! हमारे साथ कलह अथवा छल करना उचित नहीं है, अभी इसी समय हमारे वस्त्रोंको लौटा दो। हम अभीसे आपकी सब बात सुनेंगी और आप जो कहेंगे वैसा ही करेंगी। हम आपकी ही दासियाँ हैं, हमें परायी मत समझो। सर्वदा दूध, दही और अन्यान्य रुचिकर द्रव्य प्रदानकर हम आपका आदेश पालन करेंगी। मदोन्मत्त धूर्त्त! यदि अब भी वस्त्र प्रदान नहीं करोगे तो पराक्रमी कंस महाराजके निकट शीघ्र ही आपके आचरणके सम्बन्धमें बतला देंगी।'

कालिन्दीके शीतल जलमें निमग्न कम्पित शरीरवाली चञ्चल, मृगलोचना सुन्दरियोंके कपट क्रन्दन और रोषपूर्ण भयानक कठोर वाक्य श्रवणकर आप मन्द-मन्द हास्य करते हुए उनसे कहने लगे—'हे अबलाओं! यदि तुम लोग मेरी बातोंका अच्छेसे पालन करना स्वीकार करती हो तो हृदयके सङ्कोच भावका त्याग करो और आनन्दपूर्वक मेरे निकट आकर इस कदम्ब वृक्षसे अपने-अपने वस्त्रोंको ग्रहण करो। और यदि ऐसा नहीं करती हो तो मैं कभी भी तुम्हारे वस्त्रोंको वापिस नहीं लौटाऊँगा। तुम जो कंसका भय दिखा रही हो, वह दुष्ट कंस क्रुद्ध होकर भी मेरा क्या बिगाड़ लेगा? वह मेरे जैसे बलवान व्यक्तिका कुछ भी नहीं कर सकेगा।'

हे कृष्ण! आप स्पष्ट स्वरमें इस प्रकार विमल वचन उच्चारणकर लीलाकमल घुमाते हुए, कदम्ब वृक्षके ऊपर पूर्णचन्द्रकी भाँति प्रफुल्लित रूपवाले होकर, आनन्दित मनसे अपने हाथोंके द्वारा अपने शरीरको ढकनेवाली उन मृगलोचनाओंके दर्शन करने लगे एवं अपने मस्तकको हिलाते हुए उनसे कहने लगे—'हे कामिनियों! निर्वस्त्र होकर स्नान करना शास्त्रमें निषिद्ध है। प्रचुर आकाङ्क्षाके कारण निर्वस्त्र होकर यमुना जलमें स्नानके फलस्वरूप आप लोगोंका पुण्य

---

१ श्रीगोपालचम्पु पूर्व (२१/२६-२७)में श्रीमद्भागवतकी वैष्णवतोषनी टीकामें उद्धृत गौतमीय-तन्त्रोक्त वचन है कि कृष्ण अपने जिन चार सखाओं—दाम, सुदाम, वसुदाम और किंकिणीके साथ यमुना तटपर आये थे, उन्हें शास्त्रोंके ज्ञाता पण्डितगण कृष्णकी देहके बाहर स्थित और प्रकाशमान क्रमशः कृष्णके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारके नामसे विख्यात जानते थे।

क्षय हुआ है तथा आप लोगों द्वारा जलके अधिष्टात्री देवता वरुणके प्रति भी अपमान हुआ है। अतएव उस पापकी निवृत्तिके लिए अपनी-अपनी अञ्जलि बाँधकर मस्तकपर धारण करके सूर्यदेव या मुझे प्रणाम करो।' इस प्रकार आपने अपने वचनामृतके द्वारा गोपिकाओंके चित्तमें विभ्रम उत्पन्न किया। गोपबालाएँ एक-एक करके मस्तकके ऊपर अञ्जलि बाँधकर आपको प्रणाम करने लगीं तथा लज्जावशतः अपनी दृष्टिको इधर उधर निक्षेप करने लगीं।

हे कृष्ण! वाञ्छाफल प्रदान करनेवाले आपने सन्तुष्ट होकर अपहृत वस्त्र-भूषणादि उनको समर्पित किये। अनन्तर आपने ब्रजललनाओंको कामभाव और लज्जासे मुख नीचे करके आपके समक्ष अवस्थान करते हुए तथा प्रियतम सङ्गममें नवानुराग प्रकाश करते देखकर उनका अभिलषित वर प्रदान किया। तत्पश्चात् आपने सखाओंके द्वारा परिवृत्त होकर अपनी वंशीध्वनि द्वारा उन गोपबालाओंकी उत्कण्ठा वर्धित करते हुए उनकी चित्तवृत्तिको आकर्षित करके अनुग्रहपूर्वक उनको उनके घरोंमें प्रेरित किया। उस समय आप पुष्पसमूहोंसे निर्मित स्तवकको अपने कर्णयुगलोंमें धारणकर गोपकन्याओंके उन भावसमूहोंका मनमें विचारकर हृदयमें असीम आनन्दका अनुभव कर रहे थे। इसलिए हे केशीविनाशन! हे जगतशरण्य! आप उदारचित्त हैं, आप आत्मीयजनोंके प्रति प्रणय प्रकाश करते हुए विहार करते हैं, अतएव आपकी जय हो। हे भगवन्! हे अरुणाधर! आप मुझ मन्दभाग्य अधमके प्रति कृपाविधान करें।

हे मुकुन्द! जिसका अति अल्पमात्र प्रकाशरूप नवीन अङ्कुर मुनिगणोंके अन्तःकरणको स्पर्श करके अतिशीघ्र ब्रह्मानन्दसे भी उनके चित्तको निवृत्त कर देता है, उस प्रेमरसके लिए कौन व्यक्ति साहसके साथ प्रार्थना करनेके लिए समर्थ हो सकता है? अतएव मैं यद्यपि उस प्रेमरसको पानेके योग्य नहीं हूँ, तथापि यह प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्ममें मेरी यह प्रेमविषयक पिपासा परिवर्धित होती रहे॥ २॥

क्रमशः

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी–वैभव

जीवके प्रति उपदेश

(वर्ष–१९, संख्या–९–१२ से आगे)

प्रश्न १४—आसुरिक व्यक्तियोंको अपने मङ्गलके लिए क्या सतर्कता रखनी चाहिए?

उत्तर— "इतिहास आलोचने, भेवे देख निज मने,
कत आसुरिक दुराशाय।
इन्द्रियतर्पणसार, करि' कत दुराचार,
शेषे लभे मरण निश्चय॥
मरण समय ता'रा, हइया उपाय हारा,
अनुताप अनले ज्वलिल।
कुक्कुरादि पशु प्राय, जीवन काटाय हाय,
परमार्थ कभु ना चिन्तिल॥"

(निर्वेदलक्षण उपलब्धि १, कल्याणकल्पतरु)

अर्थात् इतिहासकी चर्चा करके स्वयं अपने मनमें विचार करके देखो कि दुष्ट भावनासे युक्त कितने ही असुर लोगोंने इन्द्रियतर्पणको ही जीवनका सार मानकर कितने प्रकारके दुराचार किये तथा अन्तमें वे सभी अवश्यम्भावी मृत्युको प्राप्त हुए। मृत्युके समय उनके पास कोई उपाय नहीं रहा और वे पश्चात्तापकी अग्निमें ही जलते रहे। उन्होंने कुत्ते-बिल्लियों जैसा जीवन बिताया, कभी भी परमार्थका विचार नहीं किया।

प्रश्न १५—वृथा संसार-वहनकारी व्यक्तिकी कैसी अवस्था है?

उत्तर— "गर्दभेर मत आमि करि परिश्रम।
का'र लागि, एत करि, ना घुचिल भ्रम॥
दिन जाय वृथा काजे, निशा निद्रावशे।
नाहि भावि मरण निकटे आछे व'से॥
भाल मन्द खाइ, हेरि, परि, चिन्ताहीन।
नाहि भावि, ए देह छाड़िब कौन दिन॥"

(निर्वेदलक्षण उपलब्धि, ४ कल्याणकल्पतरु)

अर्थात् मैं गधेकी भाँति परिश्रम करता हूँ, परन्तु किसके लिये इतना करता हूँ इस विषयमें अभी तक मेरा भ्रम दूर नहीं हुआ। मेरा दिन तो वृथा कार्योमें व्यतीत होता है तथा रात्रि निद्राके वशीभूत होकर व्यतीत होती है। परन्तु मैं कभी भी यह विचार नहीं करता कि मेरी मृत्यु निकट ही उपस्थित है। मैं निश्चिन्त होकर अच्छा खानेमें, मन्द (बुरे) दृश्य देखनेमें तथा सुन्दर वस्त्र पहननेमें ही व्यस्त रहता हूँ और कभी भी यह नहीं सोचता कि एक दिन मुझे यह शरीर त्यागना होगा।

प्रश्न १६—देहात्मवादियोंके लिये क्या उपदेश है?

उत्तर— "श्मशाने शरीर मम पड़िया रहिबे।
विहङ्ग पतङ्ग ताहे विहार करिबे॥

कुक्कुर शृगाल सब आनन्दित हये।
महोत्सव करिबे आमार देह लये॥
ये देहेर एइ गति, तार अनुगत।
संसार-वैभव आर बन्धुजन यत॥
अतएव मायामोह छाड़ि' बुद्धिमान।
नित्यतत्त्व कृष्णभक्ति करुन सन्धान॥"

(निर्वेदलक्षण उपलब्धि, ४ कल्याणकल्पतरु)

अर्थात् (मृत्युके पश्चात्) जब मेरा यह शरीर श्मशानमें पड़ा होगा, तब पक्षी (चील, कौए आदि) तथा कीड़े और पतङ्गे वहाँ विहार करेंगे। कुत्ते तथा शृंगाल (सियार) आदि पशु आनन्दित होकर मेरे देहको लेकर महोत्सव करेंगे। हाय! हाय! जिस देहकी ऐसी गति है, मैं उसी देहसे सम्बन्धित संसारके वैभव और बन्धु-बान्धवोंमें ही फँसा हूँ। अतएव हे बुद्धिमान पुरुषो! इस मायामोहको छोड़कर नित्यतत्त्व कृष्णभक्तिका अनुशीलन करो।

प्रश्न १७—नित्य कालके लिये आनन्द प्राप्तिके इच्छुक व्यक्तियोंके लिये भजनके अनुकूल एवं प्रतिकूल विषयोंके सम्बन्धमें क्या उपदेश है?

उत्तर— "यदि चाह नित्यानन्द-प्रवाह सेविते।
अविरत, गुरुपदाश्रय कर जीव॥
नीरस भजन समुदय परिहरि'
ब्रह्मचिन्ता आदि यत, सदा साध रति,
कुसुमित वृन्दावने श्रीरासमण्डले।
पुरुषत्व अहङ्कार नितान्त दुर्बल
'तव। तुमि शुद्ध जीव! आस्वाद्य स्वजन,
श्रीराधा नित्यसखी! परमानन्द रस
अनुभवि। मायाभोगे तोमार पतन॥"

(प्रयोजन विज्ञान उपलब्धि २, कल्याणकल्पतरु)

अर्थात् हे जीव! यदि नित्यकालके लिये आनन्दका अनुभव करना चाहते हो, तो सदा गुरु-पदाश्रय करो। नीरस ब्रह्मचिन्ता आदि निर्विशेष साधनोंका सर्वथा त्याग करो और सदा सुगन्धित पुष्पोंसे सुशोभित वृन्दावनमें श्रीरासमण्डलके प्रति रतिकी प्राप्तिके लिये साधन करो। तुम्हारे पुरुषत्वका भोक्ता-अहङ्कार अत्यन्त दुर्बल है। तुम शुद्ध जीव हो! आस्वाद्य स्वजन (श्रीकृष्णके भोग्य, उनके निजजन) एवं श्रीराधाकी नित्य सखी हो! तुम अप्राकृत परमानन्द रूपी रसका आस्वादन करो। मायाका भोग करनेसे तो तुम्हारा पतन ही होगा।

प्रश्न १८—जाड्यपरायण (आलस्यमें निमग्न) व्यक्तिके प्रति क्या उपदेश है?

उत्तर— "आजि वा शतेक वर्षे अवश्य मरण
निश्चिन्त ना थाक भाइ।
जत शीघ्र पार, भज श्रीकृष्णचरण,
जीवनेर ठिक नाइ॥"

(प्रयोजन विज्ञान उपलब्धि २, कल्याणकल्पतरु)

अर्थात् आज हो अथवा सौ वर्षोंके पश्चात्, तुम्हारी मृत्यु अवश्य ही होगी। इसलिए हे भ्राता! निश्चिन्त मत रहो। जितना शीघ्र हो सके श्रीकृष्णके चरणोंका भजन करो, जीवन कब तक रहेगा, यह निश्चित नहीं है।

प्रश्न १९—साधककी भविष्यदशा तथा स्वरूप वृत्तिके सम्बन्धमें क्या उपदेश है?

उत्तर— "For thee thy Sire on High has kept
A store of bliss above,
To end of time, thou art Oh!
His Who wants but purest love-"

(Saragrahi Vaishnav)

अर्थात् हे जीव! तुम्हारे लिये श्रीकृष्णने अपने लोकमें प्रेमानन्दका भण्डार संरक्षित रखा है। तुम उन श्रीकृष्णके ही नित्य दास हो, अतः इस जीवनके अन्तमें वे तुमसे और कुछ नहीं केवल विशुद्ध प्रेम चाहते हैं।

प्रश्न २०—"मनुष्य अपने जीवनके रहस्यको जाननेमें असमर्थ होनेपर अन्दरसे कौन उसके अमर होनेके गुणका सन्धान देता है?

उत्तर— "Man's life to him a problem dark!
A screen both left and right!
No soul hath come to tell us what
Exist beyond our sight!!
But then a voice, how deep and soft,
Within ourselves is left
Man! Man! thou art immortal soul!
Thee Death can never melt!!"

(Saragrahi Vaishnav)

अर्थात् पारमार्थिक ज्ञानके बिना मनुष्यका जीवन अन्धकारमय एवं समस्याओंसे घिरा है। यह अज्ञानता मानो बायें और दायें, दोनों ओरसे हमारी दृष्टिको अवरुद्ध कर रही है। हमारी इस जड़ीय दृष्टिसे परे कौन-सा दिव्य जगत् विद्यमान है, किसी भी व्यक्तिने आकर हमें यह नहीं बतलाया।[१] परन्तु तभी हमारे भीतरसे ही [चैत्य गुरुके] एक गम्भीर परन्तु मृदुल स्वरने हमें बताया—हे मानव! तुम एक अविनाशी आत्मा हो, जिसे मृत्यु कभी ग्रास नहीं कर सकती। [श्रीकृष्ण द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे अर्जुन एवं उद्धवको ज्ञान दिये जाने पर भी भीतरमें चैत्य गुरुके रूपमें कृष्ण ही उस ज्ञानको स्वीकार करनेकी प्रेरणा देते हैं।]

प्रश्न २१—श्रेयःपथके पथिकमें कैसी दृढ़ता होनी चाहिये?

उत्तर— "Maintain thy post in spirit world
As firmly as you can,
Let never matter push thee down,
O stand heroic man!"

(Saragrahi Vashnav)

अर्थात् हे वीर पथिक, तुम पारमार्थिक उन्नतिके मार्ग पर अपनी स्थितिको जितनी अधिक दृढ़तासे सम्भवपर हो, उतनी दृढ़तापूर्वक उसे बनाये रखो जिससे कि जड़ता [माया] कभी भी तुम्हें इस पथसे विच्युत न कर सके।

प्रश्न २२—श्रीचैतन्यचरितामृतके पाठकके प्रति श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका क्या उपदेश है?

उत्तर—"जिस प्रकार वेदान्तशास्त्रों तथा रसशास्त्रोंका यत्नपूर्वक सद्गुरुके निकट अध्ययन करना पड़ता है, उसी प्रकार इस महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृतका भी सद्-गुरुके निकट अध्ययन करना होगा।"

(प्रबोधन—अमृतप्रवाह भाष्य, संख्या ३/११)

प्रश्न २३—सद्-ग्रन्थके पाठकको क्या सतर्कता रखनी चाहिए?

उत्तर—"जिस भी ग्रन्थका पाठ करो, उसे सम्पूर्ण रूपसे पाठ करो, अन्यथा केवल निरर्थक वादपरायण होनेके कारण अन्तमें तुम्हारी तार्किकोंमें ही गिनती होगी।"

(चैतन्य-शिक्षामृत ३/३)

प्रश्न २४—आध्यक्षिक (इन्द्रियज ज्ञानसे ग्रन्थका अध्ययन करनेवाले) ग्रन्थप्रिय व्यक्तिके प्रति क्या सदुपदेश है?

उत्तर—"केवल ग्रन्थोंकी चर्चा करने तक ही सीमित मत रह जाना; साधु-वैष्णवोंके चरणाश्रयमें साधन, भावभक्ति तथा प्रेम—इन सभी तथ्योंका यथायथ पार्थक्य अनुभव करना। वैष्णवधर्म ग्रन्थोंमें निहित मात्र तत्त्व नहीं है। 'निर्ग्रन्थ'[२] शब्दके द्वारा श्रीगुरुदेव तथा वैष्णवोंको ग्रन्थातीत कहा गया है। अतएव वैष्णवतत्त्व एक रहस्य है।"

(समालोचना, सज्जनतोषणी ६/२)

क्रमशः

[श्रील भक्तिविनोद वाणी वैभवसे अनुदित]

१ एक अन्य कीर्तनमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं - "*तव निजजन कौन महाजने पठाइया दिले तुमि। दया करि' मोरे पतित देखिया, कहिल आमारे गिया, ओहे दीनजन, शुन भाल कथा पुलकित हबे हिया।*" अर्थात् मेरी दयनीय अवस्थाको देखकर भगवान् कृपापूर्वक अपने एक प्रियजनको गुरुदेवके रूपमें मेरे पास भेजते हैं जो मुझे मेरे परममङ्गलका उपदेश प्रदान करते हैं।

२ "*आत्मारामश्च मुनयो: निर्ग्रन्था: अप्युरुक्रमे।*" 'निर्ग्रन्था:' अर्थात् वे उत्तम जन जो जागतिक मोह रूपी सघन वनको पार करनेके फलस्वरूप सुनने योग्य और सुने हुए (अर्थात् शास्त्रोंमें कर्मफल प्राप्ति हेतु वर्णित समस्त) विषयोंकी चर्चा करनेसे विरत हैं। (श्रीमद्भा. १/७/१० श्लोककी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर रचित टीका)

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप

प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, अधोक्षज एवं अप्राकृत-तत्त्वके सम्बन्धमें विचार

(वर्ष २०, संख्या ५-१२ से आग)

रजः, तमः और सत्त्व—ये तीन प्रकृतिके गुण हैं। विशुद्धसत्त्वमें इस प्रकारके प्रकृतिके तीन गुणोंका किसी भी प्रकारसे मिश्रण नहीं है। इस जगत्के सत्त्व-गुणमें रजोगुण और तमोगुणका मिश्रण है। विशुद्धसत्त्व वैकुण्ठीय-वस्तु है; सर्वथा मिश्रण-रहित सत्त्व होनेके कारण—वह वसुदेव है। अप्राकृत अन्तकरण या चिद्-शक्तिवृत्तिमय अप्राकृत-सत्त्व ही भगवद्-जनक वसुदेव हैं। [विशुद्ध अर्थात् चिद्-शक्तिकी वृत्तिसे युक्त अप्राकृत-सत्त्वका ही नामान्तर 'वसुदेव' है। वह वसुदेव ही भगवद्-जनक है, अथवा विशुद्धसत्त्वमय हृदयरूपी वसुदेव ही श्रीभगवान्के आविर्भावका स्थान है।] 'अपावृतः पुमान् यदीयते (श्रीमद्भा. ४/३/२३)'—वे परमपुरुष भगवान् वासुदेव जो आवरणशून्य हैं अर्थात् स्वरूपशक्तिकी वृत्तिसे युक्त तथा स्वप्रकाश-शक्तिके लक्षणसे युक्त हैं, वे उस विशुद्धसत्त्व वसुदेवमें ही प्रकटित होते हैं।

ये वासुदेव 'अधोक्षज' वस्तु हैं। श्रीमद्भागवतमें वासुदेवके आविर्भावकी कथा कही गयी है तथा यह बतानेके लिये कि वासुदेवका जन्मरहस्य प्राकृत धारणाके अन्तर्गत नहीं है, श्रीमद्भागवतमें 'अधोक्षज' शब्दके द्वारा उनका परिचय प्रदान किया गया है। यह शब्द प्राकृत मानवकी बुद्धिसे कल्पित कोई शब्द-विशेष नहीं है। माया पीछे लग जायेगी, इस भयसे केवलाद्वैतवादी भगवान्को निःशक्तिक प्रमाणित करनेके लिये व्यस्त होते हैं, उनकी उस व्यस्तताको प्रबल वेगसे आघात देनेके लिये ही श्रीमद्भागवतमें बारम्बार इस 'अधोक्षज' शब्दका प्रयोग किया गया है।

वैष्णवराज शम्भू कहते हैं—मैं उन्हीं अधोक्षज भगवान्को नमस्कार करता हूँ जिनका emanation (सृष्ट) यह समग्र विश्व-ब्रह्माण्ड है। उन भगवान्को नमस्कार करनेसे ही सबके प्रति सम्मान ज्ञापन करना हो जाता है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

श्रीमद्भा० (४/३१/१४)

[जिस प्रकार वृक्षकी जड़में जल देनेसे उस वृक्षका तना, शाखाएँ, उपशाखाएँ आदि सभी

तृप्त हो जाते हैं और प्राणकी तृप्तिसे ही जिस प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उस प्रकार श्रीकृष्णकी पूजा करनेसे सभीकी पूजा हो जाती है।]

यदि पूर्वपक्ष हो कि शिवने दक्ष प्रजापतिका सम्मान क्यों नही किया तो यह विचार कि, "शिव तृणसे भी अधिक दीन-हीन, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु, अमानी और मानद होनेका आदर्श प्रकट करते हुए सब समय अच्युतके चरणकमलोंमें प्रणत होते हैं, इसीलिये (जागतिक व्यवहारमें) उन्होंने अपने परम पूज्य ससुर महाशय दक्ष प्रजापतिका असम्मान किया"—कभी भी उत्तरपक्षके रूपमें स्थापित नहीं हो सकता। इसका वास्तविक समाधान यह है कि—पृथक् पृथक् नमस्कार करनेपर गर्दन दुःख जाती है, एक व्यक्तिको नमस्कार करनेपर बाकी सबको नमस्कार न करनेके कारण वे असन्तुष्ट हो जाते हैं और पुनः उन सबको सन्तुष्ट करनेका प्रयास करनेपर कुछ अन्य असन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु अच्युतका चरणाश्रय करनेपर इस प्रकारकी विपत्तिकी आशङ्का नहीं है। उन अच्युतकी तृप्तिसे ही सबकी तृप्ति हो जायेगी।

जो स्वयं ही अपनी personality अर्थात् अपने स्वरूपको भक्तोंके समक्ष प्रकट करनेमें समर्थ हैं, उन [सविशेष ब्रह्म श्रीकृष्ण]की ही सेवा करना प्रयोजन है। जो Impersonal (निर्विशेष) हैं, उनको accept (स्वीकार) किया जाये या न किया जाये, कोई अन्तर नहीं पड़ता है। जो सेवा ग्रहण कर सकते हैं, उनके कथनानुसार चलना ही हमारा प्रयोजन है, उनकी सेवा न करनेपर punishable (दण्डित) होना होगा। प्रत्यक्ष प्रमाण आदिके आधार पर ही अक्षज (इन्द्रियग्राह्य) ज्ञानको स्वीकार करनेवाले व्यक्ति भगवत्-सेवाकी प्रयोजनीयता (आवश्यकता) को नहीं समझ सकते। वे अन्यान्य विषयोंके भोग अथवा त्यागके विचारमें ही प्रमत्त हो जाते हैं। आध्यक्षिकगण अर्थात् केवल अपनी जड़-इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञानको ही स्वीकार करनेवाले लोग जिन सब वस्तुओं अथवा व्यक्तियोंके प्रशंसक होते हैं, वे सभी खण्डकालके अधीन हैं, किन्तु अधोक्षजवस्तु नित्यकाल विराजित रहेगी। वह अधोक्षज वस्तु अधोक्षज-सेवकके अतिरिक्त अन्य किसीके निकट आत्मप्रकाश नहीं करती, अन्य लोग उसकी मर्यादा (महिमा)को नहीं समझ सकते। '*अप्राकृत-वस्तु नहे प्राकृत-गोचर।* (अर्थात् अप्राकृत वस्तु प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा कभी भी नहीं जानी जाती।)' कठश्रुति (१/२/२३) कहती है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

[यह परमात्म वस्तु बहुत तर्क, मेधा अथवा पाण्डित्यके द्वारा नहीं जानी जाती। जब जीवात्मा भगवान्के प्रति सेवोन्मुख होकर परमात्माकी कृपाकी याचना करता है, तब वे परमात्मा ऐसे व्यक्तिके निकट ही स्वयंप्रकाश तनुको प्रकटित करते हैं।]

याज्ञिकविप्रगण श्रीकृष्णके प्रति अपनी पत्नियोंकी अलौकिकी भक्ति और अपनी भक्तिहीनताके दर्शनसे अनुतप्त होकर आत्मनिन्दा करते हुए कहने लगे—

धिग् जन्म नस्त्रिवृद्यत्तद्धिग् धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्।
धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे॥

श्रीमद्भा० (१०/२३/४०)

[अधोक्षज भगवान्के प्रति विमुख हुए होनेके कारण हमारे शौक्र, सावित्र और दैक्ष्य- ये तीन प्रकारके जन्म, व्रत, बहुशास्त्रज्ञान, कुल मर्यादा और क्रिया कौशल—सभीको ही धिक्कार है।]

अधोक्षजकी सेवासे हीन व्यक्ति जगत्के विचारसे कितना भी श्रेष्ठ क्यों न कहलाता हो; उसकी उस श्रेष्ठताका मूल्य कानी कौड़ीके समान है। वह

महामायाका अनुचर कहलाता है और सदा निन्दाके योग्य है।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

श्रीमद्भा० (५/१८/१२)

[जिस पुरुषकी भगवान् श्रीकृष्णमें निष्काम भक्ति होती है, उसके हृदयमें समस्त देवता धर्म-ज्ञान-वैराग्य आदि सम्पूर्ण गुणोंके साथ सदा निवास करते हैं। हरिभक्तिसे विहीन व्यक्ति—अन्याभिलाषा-कर्म-ज्ञान-योगमें रत अथवा गृह आदिमें आसक्त रहता है, मनोधर्मके द्वारा वह तो असत् बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है, अतएव उसमें महापुरुषोंके वे गुण कहाँ-से आ सकते हैं?]

श्रीमद्भागवतमें अन्य लगभग पचास स्थानोंपर 'अधोक्षज' शब्दका उल्लेख है। अब जिज्ञासाका विषय यह है कि इस अधोक्षजके साथ प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्षका क्या सम्बन्ध है?

निर्विशेष ब्रह्मवाद—अपरोक्ष तक है, और सविशेष ब्रह्मवादकी सत्ता उससे बहुत उन्नत है जैसा श्रील रूप गोस्वामीने वर्णन किया है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज॥
माली हञा करे सेइ बीज-आरोपण।
श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन॥
उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' याय।
'विरजा', 'ब्रह्मलोक' भेदि' 'परव्योम' पाय॥
तबे याय तदुपरि 'गोलोक-वृन्दावन'।
'कृष्णचरण कल्पवृक्षे' करे आरोहण॥

चै. च. मध्य. (१९/१५१-१५४)

यह एक बहुत सुन्दर analogy (उपमा) है। ब्रह्माण्डमें अर्थात् इस भौतिक जगत्में भक्तिलताका आश्रय-स्थान नहीं है। ब्रह्माण्डके पार 'विरजा'—कारणजल है, वहाँ तीनों गुण साम्यावस्थामें हैं, वहाँ भी भक्तिलताका आश्रय नहीं है। उसके आगे निर्विशेष ब्रह्मधाम है, जहाँ किसीकी अनुभूति अथवा अनुभव, अथवा अनुभवनीय पदार्थ क्या है, वह स्थिर नहीं है—वहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय वस्तुके वैशिष्ट्यका अभाव है, वहाँ भी भक्तिलताका आश्रय-स्थान नहीं है। इसके आगे परव्योम है, वहाँ जड़ जगत्के आकाशके समान स्थूल-सूक्ष्मका accommodation (स्थान) नहीं है, वहाँ केवल अविमिश्र-चेतन है, अचेतन नामक किसी वस्तुकी गन्धमात्र भी वहाँ नहीं है। उसको ही वैकुण्ठ धाम कहते हैं। वहाँ ढ़ाई रसोंमें षड़ैश्वर्यपति श्रीनारायण सेवित होते हैं। ढ़ाई रस कहनेसे तात्पर्य है कि शान्त, दास्य और सख्यरसका आधा अर्थात् गौरव-सख्य वहाँ विद्यमान हैं, वह Lower Hemisphere—गोलोकका निम्नार्ध है। यहाँसे अर्थात् इस जगत्के विचारसे देखनेपर मर्यादा पथमें पूज्य-बुद्धिसे नाभिके ऊपर स्थित इन्द्रियोंके प्रति पवित्र ज्ञानसे with dignity (गौरवके साथ) वहाँ पहुँचा जा सकता है [अर्थात् जिस प्रकार प्रभुके साथ, पिताके साथ, राजाके साथ अथवा किसी वरिष्ठ व्यक्तिके साथ उनकी नाभिके ऊपर स्थित इन्द्रियोंके साथ ही आँख, नाक, कान, मुख आदिके प्रति पूज्य बुद्धिसे सम्बन्ध होता है, किन्तु उनकी जननाङ्ग आदि इन्द्रियोंके साथ कदापि कोई सम्बन्ध कल्पनामें भी नहीं होता।] Mental level (मानसिक स्तर) में खड़े होकर गौरव बुद्धिसे गोलोकके निम्नार्ध तक देखा जाता है, किन्तु उन्नतार्ध—जहाँ पर विश्रम्भ विचार वर्तमान है, उस स्थानका कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। गोलोकके उन्नतार्धमें पूर्ण पञ्चरस विद्यमान हैं। वहाँ विश्रम्भ-सख्यके विचारसे सखा लोग कृष्णके कन्धेके ऊपर चढ़ते हैं, कृष्णके ऊपर अपने पाँव तक रख देते हैं, विश्रम्भ-वात्सल्यमें कृष्ण पुत्रत्वको प्राप्त हुए हैं,

पिता-माताने पुत्रके जन्मके प्रारम्भसे ही पुत्रकी सब प्रकारसे सेवा करनेका सुयोग प्राप्त किया है। वे पुत्रको पाल्य-ज्ञानसे उसका ताड़न-भर्त्सन करते हैं। पूज्य भगवान्‌से भी अपनी सेवा करवा लेते हैं और Consort-hood (कान्तरस) सर्वापेक्षा आश्चर्यजनक है—वह सर्वोत्कृष्ट चमत्कारिताका विचार है।

यदि पूर्वपक्ष हो—मेरे जैसे उग्र (अशिष्ट) और अविवेकी व्यक्तिको ऐसा क्या करना चाहिए जिससे कि वे श्रीकृष्ण मेरे पुत्र या स्वामी बन जायें? तब विचार यह है कि मैं तो किसी mental world (मनोकल्पित जगत्) की बात नहीं बोल रहा हूँ। इसलिये किसी Anthropomorphism[१] (मानवीकरण), Zoomorphism[२] (पशु दैवीकरण), या Phytomorphism[३] (वृक्ष रूपमें भगवान्) का विचार आवाहन करना उचित नहीं है। अथवा Apotheosis[४] (दैवीकरण) या anthropomorphic idea (मानवीकरण विचार) के आधारपर अधोक्षज जगत्‌को समझनेका प्रयास नहीं करना। उपरोक्त विचारोंके अनुयायी निर्बोध लोग कभी भी अधोक्षजकी सेवाको नहीं समझ सकते। अपरोक्ष, परोक्ष या प्रत्यक्ष—इस जगत्‌की भूमिकासे उत्पन्न विचार हैं, अधोक्षजकी भूमिका अधोक्षज-वैकुण्ठमें है, वे अधोक्षज भगवान् जब कृपा करके अवतीर्ण होते हैं, स्वयंको दिखा देते हैं, तभी उनको देखा जा सकता है। उपनिषद्‌में कहा गया है—"नेदम् यदिदमुपासत[५] (अर्थात् 'वह' जो जड़ इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जाता, परन्तु जड़ इन्द्रियाँ जिसके द्वारा क्रियाशक्ति प्राप्त करती हैं, 'उसे; ही तुम 'ब्रह्म' जानो, न कि इसे जिसकी मनुष्य यहाँ उपासना करते हैं)", इसी विचारका अवलम्बन करते हुए आरोहपन्थासे उन श्रीभगवान्‌के समीप उपस्थित होनेका प्रयास मत करना, उनकी कृपाकी अपेक्षा करते हुए उनको approach (उनके निकट गमन) करनेकी चेष्टा करना।

क्रमशः

[श्रीसरस्वती-संलापसे अनुदित]

---

१ मनुष्यके गुणों और स्वभावको भगवान्‌में आरोपित करना अर्थात् ऐसा मानना कि भगवान् मानवीय गुणों एवं स्वभाव युक्त है।

२ किसी पशुके गुणों और स्वभावको भगवान्‌में आरोपित करना अर्थात् ऐसा मानना कि भगवान्‌के गुण एवं स्वभाव अमुक पशुके समान ही हैं (यथा भगवान् गायके समान अति शान्त हैं, सिंहके समान अपने बच्चेके लिये स्नेहशील एवं शत्रुके लिये हिंसक हैं)।

३ किसी पौधेके गुणों और स्वभावको भगवान्‌में आरोपित करना अर्थात् ऐसा मानना कि भगवान्‌के गुण एवं स्वभाव अमुक पौधेके समान ही हैं।

४ किसी वस्तु अथवा व्यक्तिकी अत्यधिक महिमा बताकर उसे भगवान्‌के आसन पर आरूढ़ कर देना।

५ केन उपनिषद् (१/४-८) में कहा गया है—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ४॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ५॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ६॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ७॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ८॥

अर्थात् 'वह' जो वाणीके द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो पाता, अपितु जिसके द्वारा वाणी अभिव्यक्त होती है; 'वह' जिसका व्यक्ति मनके द्वारा चिन्तन नहीं करता, अपितु 'वह' जिसके द्वारा मन मनन करनेकी क्षमता प्राप्त करता है; 'वह' जिसे व्यक्ति चक्षुके द्वारा नहीं देख पाता, अपितु 'वह' जिसके द्वारा चक्षुओंको देखनेकी क्षमता प्राप्त होती है; 'वह' जिसका व्यक्ति कर्णके द्वारा श्रवण नहीं करता, अपितु 'वह' जिसके द्वारा कर्ण श्रवण कर पाते हैं; 'वह' जिसका व्यक्ति श्वासके द्वारा श्वसन नहीं करता अपितु जिसके द्वारा प्राण-वायु स्वयं अग्रसर होता है; 'उसे' ही तुम 'ब्रह्म' जानो, न कि इसे जिसकी मनुष्य यहाँ उपासना करते हैं।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पत्रावली

(पत्र-२१)

विज्ञान-शब्दका वास्तव अर्थ

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ,
चौमाथा, पोः-चुचूड़ा (हुगली)
दिनाङ्क—२/८/१९६२

स्नेहास्पदेषु—

————! तुम्हारे द्वारा ३०/७/६२ को ————महाराजके नाम भेजा गया पत्र मुझे मेदिनीपुरसे आनेके बाद प्राप्त हुआ।

विश्ववासियोंको हमें शान्तिका पथ दिखाना होगा। भ्रान्त-पथिक या अन्ध-पथिक ठीक पथ या उपयुक्त पथपर चलना नहीं जानते और चल नहीं सकते। अन्धे व्यक्तिकी [उपयुक्त पथपर चलनेकी] क्षमता नहीं होती और अज्ञानी व्यक्ति विपथगामी होता है। अज्ञानी व्यक्तिको ज्ञान और विज्ञान सिखाना होगा। आजकल जिसे विज्ञान कहा जाता है, विज्ञानियों [विशेष ज्ञानी व्यक्तियों अर्थात् भगवान्‌के शुद्धभक्तों] के मतानुसार वही अज्ञान है। 'ज्ञान' शब्दसे पहले 'वि' उपसर्ग लगानेपर 'विज्ञान' शब्द बनता है। व्याकरणको भली प्रकारसे जानने वालोंके मतानुसार 'वि' उपसर्गका दो अर्थोंमें व्यवहार होता

है—'विशेष' (वियुक्त) तथा 'विच्युति (विहीन, विरहित)। जैसे—विश्री (श्री विहीन), विस्मृति (स्मृति विहीन), विफल (फल रहित), विकृति (कृति रहित अथवा कृति युक्त) इत्यादि शब्दोंमें 'वि' उपसर्ग विच्युतिके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। किन्तु, विकृति शब्दमें 'वि' उपसर्ग वियुक्त एवं विहीन दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। अतएव आजकलके 'विज्ञान' शब्दका अज्ञानी लोग एक प्रकारका अर्थ [विशेष ज्ञान – ऐसा अर्थ] करते हैं एवं वास्तविक ज्ञानी लोग दूसरे प्रकारका अर्थ [अज्ञान – ऐसा अर्थ] करते हैं। अतः 'विज्ञान' शब्द कहनेसे दोनों प्रकारके अर्थोंका ही बोध होता है।

मैं पूर्वचकमें ----प्रभुके देहान्तके उपलक्षमें १०-१२ दिनसे इसी अज्ञान नामक विज्ञानकी चर्चा कर रहा था। मुझे चर्चाका सुयोग प्राप्त हुआ, क्योंकि उनका नाती ----दास विज्ञानमें एम.एस. सी. है तथा पाँशकुड़ा कॉलेजमें प्रोफेसर है। वे Mathematical Psychology पढ़ाते हैं। उनके द्वारा लिखित एक पुस्तक (व्यावहारिक मनोविज्ञान) Class IX-XI (नवीं से ग्यारहवीं) कक्षाके लिए तथा B.A. तकके विद्यार्थियोंके लिये विश्वविद्यालयमें Approved (मान्य) होकर पाठ्यक्रमके अन्तर्गत आ गयी है। परन्तु यह पुस्तक भी ठीक विज्ञान-सम्मत नहीं हुई है। जब तुम यहाँ आओगे तभी इसपर चर्चा करूँगा। इति (पत्रको यहीं समाप्त करता हूँ)-

आशीर्वादक

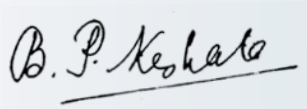

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-४१, संख्या-५ से अनुदित)

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका इकतीसवाँ वर्ष

श्रीनामी और नाम अभिन्न हैं

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाने इकतीसवें वर्षमें शुभ पदार्पण किया है। देखते-ही-देखते एक वर्ष व्यतीत हो गया। गत बारह मासोंका परिक्रमण करते समय श्रीपत्रिकाने अनेक अनुभूतियोंको सञ्चय किया है। श्रीपत्रिका श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंको अपने वक्षपर धारण करती हुई पूर्ण-तत्त्वदर्शनकी अधिकारिणी हैं। जिस प्रकार श्रीभगवान् पूर्णवस्तु हैं, उसी प्रकार उनकी वाणी-विग्रह या श्रीमूर्ति स्वरूपा यह पत्रिका भी स्वयं-सम्पूर्णा हैं। अतः 'नई अनुभूति' से अभिप्राय इस पार्थिव जगत्की किसी प्राकृत वस्तुसे नहीं है। जिस प्रकार परमेश्वर चित्-अचित् अनन्त विश्वके मूलाधार हैं, उसी प्रकार उनकी वाणी अथवा नामब्रह्म भी उनसे किसी अंशमें कम नहीं हैं—यही साधु-शास्त्र-गुरुवाक्य-सम्मत वास्तव सत्य है।

श्रीगौर-गोपालकी महिमा और माहात्म्य

इस वर्ष श्रीपत्रिका [श्रीगौड़ीय वेदान्त] समितिके परम-उपास्य श्रीविजय-विग्रह गौरगोपाल श्रीगौरसुन्दरको मुखपृष्ठपर धारणकर प्रकट हुई हैं। इन श्रीगौरसुन्दरके आनुगत्यमें ही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने विगत अठ्ठाईस वर्षों तक विभिन्न धामों और तीर्थस्थानोंका दर्शन और परिक्रमा सम्पादित की। परवर्ती कालमें उनके आश्रित जनगण भी '*महाजनेर जेइ पथ, ताते हब अनुरत, पूर्वापर करिया विचार*' की नीति[१] का अवलम्बन करते हुए उन्हींका अनुसरण कर रहे हैं। इन श्रीगौरगोपालजीने जिस स्थानपर भी शुभविजय की है, वहाँ पर इन्होंने, भक्त हों या अभक्त, पापी अथवा पुण्यवान, सभी लोगोंकी दृष्टिको आकर्षित करते हुए उन लोगोंसे वात्सल्य-स्नेहसेवा ग्रहण की है। भक्तोंके प्रति अहैतुकी कृपा वितरणकारी ऐसे मनोहर रूपवान श्रीविग्रहका दर्शन वास्तवमें ही दुर्लभ है। श्रीभगवान् वात्सल्यरसके सेवक-सेविकाओंके अप्राकृत स्नेहको आकर्षण करनेके लिए ही देवदुर्लभ श्रीरूपको प्रकट करते हैं।

श्रीमठका उद्देश्य और मठवासीके कर्तव्यका निर्णय

श्रीपत्रिका श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंके श्रीमुखसे विगलित वाणीको संरक्षित रखनेवाला एक शक्तिशाली अप्राकृत

१ श्रील नरोत्तम दास ठाकुरके वचन—इस भक्तिपथके पूर्वकालमें हुए महाजनों यथा—दण्डकारण्यवासी मुनिगण, श्रुतियाँ, बिल्वमङ्गल ठाकुर आदि एवं परवर्ती कालमें हुए सिद्ध आचार्यों, यथा—श्रीरूप गोस्वामी आदि षड्गोस्वामीगणने जिस साधनरीति और सिद्धरूपमें प्राप्त प्रेमसेवाकी रीतिको प्रदर्शित किया है, उसीका विचार करके उसी पथमें निरन्तर रत रहना चाहिये। (प्रेमभक्तिचन्द्रिको २/२)

परमचेतन यन्त्र है। मठवासी व्यक्ति उस चैतन्यवाणीका अनुसरण करते हुए गुरुगृहमें वास करते हैं और अपने पारमार्थिक कल्याणकी प्राप्तिके लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं। हरिकथाका कीर्तन करना ही मठ या आश्रम है। गौरवाणीके प्रचारके द्वारा मठका वास्तविक अस्तित्व प्रमाणित होता है।

"प्राण आछे ताँर, सेहेतु प्रचार।
प्रतिष्ठाशाहीन कृष्णगाथा सब।"

—वैष्णव के (१८)

[व्रजवासीगण ही वास्तविक प्रचारक हैं, और क्योंकि वे ही यथार्थमें प्राणयुक्त हैं (प्रतिष्ठाके इच्छुक व्यक्तियोंके समान मृत नहीं हैं), इसीलिये उनके द्वारा कीर्तित कृष्णकी मधुर-कथाओंमें निजप्रतिष्ठाकी लेशमात्र भी आशा नहीं है।]

श्रीविग्रह और नाम प्राणयुक्त हैं। उन प्राण-पुरुषकी प्राण-प्रतिष्ठाके उद्देश्यसे ही मठ-मन्दिर या आश्रमकी आवश्यकता है। "*परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्*"—शुद्ध हरिकीर्तन ही वे प्राणपुरुष हैं। जिस स्थानपर उन प्राणपुरुष हरिकीर्तनका अस्तित्व या आविर्भाव नहीं है, वहाँ किया गया समस्त श्रम ही व्यर्थ है। '*अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्*। अर्थात् प्राणरहित देहपर सज्जित अलङ्कार, आभूषण इत्यादि सर्वथा व्यर्थ हैं, वे केवल लोकरञ्जनमात्र हैं।' मठवासका अभिमान करके भी हममें-से अनेक लोग सेवाकार्यके बदलेमें जागतिक लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाकी कामना करनेवाले कङ्गाल बन जाते हैं। सेवाधर्ममें अन्याभिलाष, चापलूसी या जागतिक प्रशंसावादका कोई स्थान नहीं हो सकता एवं उसका रहना भी उचित नहीं है। इसलिए मठ एवं मठवासीके वास्तविक स्वरूपका बोध होना आवश्यक है।

आचरण और प्रचारके अधिकारी कौन?

वैष्णव-धर्म या सेवाधर्म सम्पूर्ण रूपसे व्यक्तिनिष्ठ है। साधनाके क्षेत्रमें व्यक्तिगत रूपसे श्रीगुरु-वैष्णव-शास्त्रादिके आनुगत्यमें नहीं रहनेपर किसीका भी मङ्गल नहीं होता। साधक-जीवनमें जिसने भलीभाँति श्रवण नहीं किया है, वह कीर्तन या प्रचार करनेका अधिकारी नहीं है। आदर्श जीवन ही स्वयं एवं अन्यका कल्याण करनेमें समर्थ है। दूसरोंमें दोष देखनेसे अथवा दूसरोंकी निन्दा करनेसे कदापि आत्ममङ्गल नहीं होता। जड़विषयों और विषयी व्यक्तियोंका संस्पर्श साधकको साधन-भजनसे दूर धकेल देता है। उस समय वह "*यथायोग्य विषय भुञ्ज अनासक्त हञा*"[२]—वाक्यके वास्तविक अर्थको समझ पानेमें असमर्थ हो जाता है। "*विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन। मन दुष्ट हइले नहे कृष्णेर स्मरण॥*"[३]—यह उपदेश भी तब ठीक प्रकारसे अनुभव नहीं हो पाता। परम मुक्तपुरुषका नित्यसिद्ध भाव और अनर्थग्रस्त प्राकृत साधकका अधिकार एक समान नहीं है। गुरु-वैष्णवोंका अवैध अनुकरण करनेसे जीवका पतन हो जाता है, किन्तु उनके सेवामय अनुसरणसे ही उसे उन्नत गतिकी प्राप्ति होती है। "*महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान। जाहा देखि तुष्ट हन गौर भगवान्॥*"[४]—इस वाक्य द्वारा साधकको अपने व्यक्तिगत जीवनमें युक्तवैराग्य पालन करनेका उपदेश दिया गया है।

श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन ही आत्यन्तिक मङ्गलका कारण

ए घोर संसारे पड़िया मानव, ना पाय दुःखेर शेष।
साधुसङ्ग करि' हरि भजे यदि; तबे अन्त हय कलेश॥
विषय-अनले ज्वलिछे हृदय, अनले बाड़े अनल।
अपराध छाड़ि' लय कृष्णनाम, अनले पड़्ये जल॥

---

२ (श्रीचैतन्य महाप्रभुका श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको उपदेश) तुम अनासक्त होकर यथायोग्य विषयोंको स्वीकार करो। — चै.च.मध्य (१६/२३८)

३ (श्रीचैतन्य महाप्रभुका वचन) विषयी व्यक्तिके द्वारा प्रदत्त अन्न खानेसे मन मलिन हो जाता है और मनके मलिन होनेपर कृष्णका स्मरण नहीं हो पाता। — चै.च.अन्त्य (६/२७८)

४ श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंमें वैराग्य प्रधान है, जिसे देखकर भगवान् गौरसुन्दर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। — चै.च.अन्त्य (६/२७८)

[अर्थात् मनुष्य इस भयानक संसारमें पड़कर अन्तहीन दुःख भोग रहा है। परन्तु यदि वह साधुसङ्गमें श्रीहरिका भजन करता है तब उसके क्लेशोंका अन्त सम्भवपर है। सांसारिक विषय-भोगोंकी अग्निमें उसका हृदय जल रहा है और इन विषयोंको भोगनेसे उसकी जलन शान्त न होकर निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। अपराधशून्य होकर श्रीकृष्णनाम रूपी सुधाके वर्षणसे यह अग्नि शान्त हो सकती है।]

(महाजन पदावली कीर्तन)

श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन यज्ञमें दीक्षित होना ही वास्तविक सेवाधर्म है। श्रीभगवान् मोहमें अन्धे हुए जीवके कल्याणके लिए अपने निज-जनोंको इस जगत्में भेजते हैं। श्रीभगवान् ही निखिल विश्वके कर्त्ता हैं, प्रभु हैं। वे समस्त यज्ञोंके भोक्ता हैं और स्वामी हैं—यह बताने पर भी जीवके उन श्रीभगवान्की अवज्ञा करनेके परिणामस्वरूप ही उसे इस संसारमें अन्तहीन दुर्दशा-दुर्गतिको स्वीकार करना पड़ता है। श्रीभगवान्के श्रीचरणकमलोंमें पूर्ण आत्मसमर्पण करना ही आत्माका धर्म है। यह शिक्षा प्रदान करनेके लिए ही परम दयालु भगवद्-भक्तगण आदर्श जीवन यापन करते हैं। श्रीगुरुके चरणकमलोंमें शरणागत होकर आत्मानुशीलन करनेसे ही ईश्वर पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट हो सकते हैं। 'सुमेधा' अर्थात् अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्तिगण ही सङ्कीर्तन-यज्ञके द्वारा परम-उपास्य श्रीभगवान्की आराधना करते हैं। इस कलियुगमें शचीनन्दन श्रीगौरहरिने ही सङ्कीर्तन-यज्ञको प्रारम्भकर इसका विपुल प्रचार-प्रसार किया है। इस नाम-सङ्कीर्तनके द्वारा समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं और परम कल्याणका उदय होता है। इसलिए गुणोंको जाननेवाले सारग्राहीगण इस कलिकालको समस्त गुणोंकी निधि जानकर शत मुखोंसे इसकी प्रशंसा करते हैं।

साधन-भजनके बिना जागतिक योग्यताकी तुच्छता

'*पड़िया शुनिया लोक गेल छारेखारे। कृष्ण-महामहोत्सव वञ्चिला सबारे॥* [अर्थात् पढ़-सुनकर भी लोग जड़ीय विषयोंमें ही निमग्न रह गये। श्रीकृष्ण-भक्तिके महा-महोत्सवने इन सभीको वञ्चित कर दिया।]'—परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने अपने द्वारा प्रतिष्ठित नवद्वीप स्थित "संस्कृत चतुष्पाठी"के द्वारपर छात्रोंको सावधान करनेके लिए इस महाजन-वाक्यको लिखवाया था। जड़ीय शिल्प, कला, विज्ञान अथवा दर्शनके विषयमें कोई कितना भी दक्ष क्यों न हो, कृष्णभजन अथवा कृष्णनामके अनुशीलनके बिना उसका कोई भी वास्तविक परिचय नहीं रह सकता—इस तथ्यसे अवगत कराना ही श्रील गुरुदेवका उपरोक्त वाक्यको लिखवानेका उद्देश्य था। जीव जड़-अहंकारमें मत्त होकर आत्मकल्याणके विषयमें भूल जाता है, यही उसका चरम दुर्भाग्य है।

स्मृतिशास्त्र व्याकरण, नानाभाषा आलोचन,
वृद्धि करे यशेर सौरभ।
किन्तु देख चिन्ता करि, यदि ना भजिले हरि,
विद्या तव केवल रौरव॥

(उपदेश ९, कल्याणकल्पतरु)

[हे मन! स्मृतिशास्त्रों, व्याकरण तथा अनेक भाषाओंकी चर्चा अवश्य ही यशकी सुगन्धको वर्धित करती है। परन्तु, थोड़ा विचार करके देखो! यदि तुमने कृष्णका भजन नहीं किया तब ये समस्त विद्याएँ केवलमात्र रौरव नामक भीषण नरकका मार्ग ही प्रशस्त करती हैं।]

भगवद्-अनुशीलनके बिना जागतिक समस्त प्रकारकी योग्यताएँ ही तुच्छ हैं, यही पदकर्ता श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने विशेष रूपसे बतलाया है। अतः हरिभजनमें ही समस्त योग्यताएँ और अधिकार निहित हैं।

श्रीगौरसुन्दरकी असमोर्द्ध्व करुणामें समग्र जगत् प्लावित

जगत्में कुछ लोग भोगके पथ पर, तो अन्य कुछ लोग त्यागके पथपर दौड़ रहे हैं। त्यागीगण "नेति, नेति" के विचारका अवलम्बन करते हुए भगवान्के श्रीनाम-रूप-गुण-लीला आदिके अप्राकृत वैशिष्ट्यको भी अस्वीकार कर देते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टका प्रचार करनेवाले जगद्-गुरु शुद्धभक्तिका परिचय प्रदान कर जगत्के जीवोंका नित्यकल्याण साधित करते हैं। महावदान्य-अवतार श्रीमन्महाप्रभुके समयमें विषयासक्त व्यक्तियोंने स्त्री-पुत्रादिकी आसक्तिका परित्याग कर दिया था, पण्डितोंने शास्त्र सम्बन्धी वाद-विवादोंका त्याग कर दिया था, योगियोंने कष्टपूर्ण साधनाओंका वर्जन कर दिया था, तपस्वियोंने तपस्या परित्याग कर दी थी एवं निर्विशेष मतवादियोंने निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धान छोड़ दिया था। उस समय सम्पूर्ण जगत् भक्तिरसमें डूब गया था। "*विश्वं गौररसे मग्नं, स्पर्शोऽपि मम नाभवत्*। अर्थात् समस्त विश्व गौररसमें निमज्जित हो गया, किन्तु हाय! मेरा उससे स्पर्शमात्र भी नहीं हुआ।"—इतना अधिक सुयोग एवं सुअवसर प्राप्त होनेपर भी यदि हम गुरु-वैष्णवोंकी सेवासे वञ्चित होते हैं, तब हमारी क्या गति होगी? वर्तमान भोगवादके युगमें ऐसे सौभाग्यवान् व्यक्ति बहुत ही कम हैं, जो वास्तविक सत्यका अनुसन्धान करते हैं।

साधु पाउया बड़ कष्ट जीवेर जानिया।
साधु-गुरुरूपे कृष्ण आइल नदीया॥

(प्रेम विवर्त)

[यह जानकर कि जीवके लिये साधुको ढूँढ पाना बहुत कठिन है, श्रीकृष्ण स्वयं ही एक शुद्धभक्तके रूपमें नदीयामें आविर्भूत हुए।]

स्वयंरूप श्रीकृष्णचन्द्रने एक दिन इस बङ्गदेशमें ही साधु-गुरुके रूपमें अवतीर्ण होकर अयाचितरूपसे अर्थात् जगत्वासियोंके द्वारा याचना न किये जाने पर भी उन सबके द्वार-द्वारपर जाकर, यहाँ तक कि अत्यन्त पतित जनोंके पास जाकर भी श्रीनाम-प्रेमधर्मका प्रचार किया था। आज समस्त विश्ववासी उनके प्रदर्शित पथके प्रति आकर्षित हो रहे हैं और इसी कारण "*पृथिवीते जत आछे नगरादि ग्राम। सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥* अर्थात् इस पृथ्वीपर जितने भी नगर एवं ग्राम हैं, सर्वत्र ही मेरे नामका प्रचार होगा।" (चै. भा. अन्त्य. ४/१२६)—इस भगवद्-वाणीकी सार्थकताकी उपलब्धि हो रही है।

पाश्चात्य देशवासी भी श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके प्रति आकर्षित

हम पाश्चात्य देशोंके लोगोंको प्रायः जड़बुद्धि-सम्पन्न और धर्मज्ञानसे रहित रूपमें ही जानते हैं। वे लोग भी आज श्रीगौरसुन्दर तथा उनके आश्रित गोस्वामियोंकी शिक्षाओंसे निरन्तर प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। उन लोगोंमें इतना आग्रह और साधन-भजनकी प्रचेष्टा देखकर क्या हमलोग सीख नहीं सकते? देवताओं द्वारा वाञ्छित, आर्यऋषियोंकी पदाङ्कित, सुपवित्र इस भारतभूमि पर हमारा जन्म हुआ है, इस स्थानपर ही भगवान्के विविध अवतारोंने नरलीला प्रकट करते हुए जीवोंको कितनी शिक्षाएँ प्रदान की हैं! उनकी "*उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत*!"[५]—इस वाणीसे क्या हमारी मोह-निद्रा भङ्ग नहीं होगी? श्रीभगवान् और उनके द्वारा भेजे गये उनके निजजनोंके प्रति हम सदैव ऋणी हैं, उस ऋणको हम अनन्त कालमें भी चुका नहीं सकते। यह जानते हुए आत्मकल्याणके विषयमें अपने मनको लगाना हमारा परम कर्तव्य है।

श्रीगौरसुन्दर, षड्-गोस्वामियों और श्रीरूपानुग सारस्वत गौड़ीय गुरुवर्गका जयगान करते हुए मैं वक्तव्य समाप्त कर रहा हूँ। वे लोग हमपर प्रचुर आशीर्वाद वर्षण करें, जिससे कि इस विवाद-प्रधान कलिके हाथोंसे हम सब प्रकारसे मुक्त हो सकें।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष ३१, संख्या १से अनुदित)

५ हे साधुगण! 'उत्तिष्ठत' अर्थात् नाना प्रकारकी विषय चिन्ताओंसे निवृत्त होओ, 'जाग्रत' अर्थात् अनर्थ परित्याग करके स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित होओ, 'प्राप्य वरान् निबोधत' अर्थात् महान् व्यक्तियोंकी कृपा प्राप्त करके भगवान्को जाननेके लिए सचेष्ट होओ।

श्रील रूप गोस्वामीका अवदान वैशिष्ट्य

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[द्वारा १५ एवं २१ अगस्त, २००८ को श्रील रूप गोस्वामी प्रभुकी तिरोभाव-तिथि महोत्सवके उपलक्ष्यमें श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावनमें कही गयी हरिकथाके आधारपर]

श्रील रूप गोस्वामीका परिचय

मैं साधारण और सहज रूपमें, सरल बोधगम्य भाषामें आप लोगोंके समक्ष श्रील रूप गोस्वामीके वैशिष्ट्यका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ। श्रील रूप गोस्वामीके सम्बन्धमें श्रील नरोत्तम दास ठाकुरके वचन हैं—

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपादान्तिकम्॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका २)

[जिन्होंने इस पृथ्वीपर श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टकी स्थापना की, वे श्रील रूप गोस्वामी कब मुझे अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान प्रदान करेंगे?]

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिः स्यां जन्म-जन्मनि॥

(मुक्ताचरितम्)

[मैं अपने दाँतोंमें तृण धारणपूर्वक पुनः-पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्मान्तरमें मैं श्रील रूप गोस्वामीके श्रीचरणकमलोंकी धूलि होऊँ।]

श्रील रूप गोस्वामी प्रभु श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर हैं। श्रीरूप मञ्जरी कृष्ण-लीलाकी परिकर हैं। अभी पूर्व वक्ताओंके द्वारा श्रीरूप मञ्जरी सहित अन्यान्य गोपियोंके भावोंका वैशिष्ट्य बतलाया गया। उन समस्त गोपियोंमें कोई-कोई समस्नेहा हैं—यथा ललिता, विशाखा इत्यादि गोपियाँ। ये श्रीकृष्ण और श्रीमती राधिका दोनोंको ही समान स्नेह करनेवाली होनेपर भी राधिकाके पक्षमें कुछ झुकी हुई होती हैं। अन्य कुछ गोपियाँ सखी-स्नेहाधिका हैं। यही गोपियाँ

मञ्जरी कहलाती हैं। ये मञ्जरियाँ केवल श्रीराधिकाको ही अपनी स्वामिनी समझती हैं और इनका भाव बहुत उत्तम कोटिका होता है, जो 'भावोल्लास रति' कहलाता है। श्रीराधाकृष्णकी निकुञ्जलीलामें जहाँ श्रीललिता-विशाखाका भी प्रवेश नहीं है, वहाँपर निसङ्कोच भावसे इन मञ्जरियोंका प्रवेश है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामीने उनकी महिमाका कीर्तन करते हुए कहा है—

ताम्बुलार्पण-पादमर्दन-पयोदानाभिसारादिभि-
र्वृन्दारण्य-महेश्वरीं प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रियाः।
प्राणप्रेष्ठ-सखीकुलादपि किलासङ्कोचिता-भूमिकाः
केलिभूमिषु रूपमञ्जरि-मुखास्तादासिकाः संश्रये॥

(श्रीव्रजविलास स्तव ३८)

[जो ताम्बुल प्रदान करना, पाद-मर्दन करना, जल प्रदान करना, अभिसार आदि सेवाओंके द्वारा वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाको सर्वदा परितृप्त करती हैं, प्राणप्रिय ललिता आदि सखियोंकी अपेक्षा भी जो श्रीमती राधिकाकी अधिक प्रियतमा हैं तथा जो श्रीराधाकृष्णके केलिकुञ्ज (क्रीड़ास्थली)में भी निःसङ्कोच भावसे गमनागमन करती हैं, श्रीराधिकाकी दासियोंमें प्रधाना उन श्रीरूप मञ्जरीका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।]

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मञ्जरियाँ श्रीललिता, श्रीविशाखा आदि सखियोंसे भी अधिक श्रेष्ठ हैं। उन मञ्जरियोंकी स्थिति वैसी ही है जैसे किसी रानीकी एक दासीकी होती है—जो सब समय रानीके महलमें झाड़ू लगाती है, रानीके चरणोंको दबा देती है तथा अनेक अन्य सेवाएँ करती है, इस प्रकार सदैव रानीके समीप रहती है। और जब राजा अथवा अन्य कोई व्यक्ति रानीसे मिलनेके लिये आये या अन्य लोग आएँ तो वे उस दासीका आदेश लेते हैं कि 'रानी क्या कर रही हैं? क्या अभी मैं मिलनेके लिए जा सकता हूँ?' और तत्पश्चात् दासीका आदेश लेकर ही वे रानीसे मिलने जाते हैं।

श्रीललिता-विशाखा श्रीमती राधिकाके ही समान एक प्रकारकी स्वतन्त्र नायिका हैं। मञ्जरियाँ नायिका नहीं हैं। नायिका होनेके योग्य होनेपर भी, वे सर्वदा स्वयंको श्रीमती राधिकाकी पाल्य-दासी समझती हैं। इसलिए निकुञ्जमें जहाँ श्रीराधा-कृष्णका मिलन हो रहा होता है, जहाँपर श्रीमती राधिका एक प्रकारसे प्रसाधन रहित अवस्थामें होती हैं, वहाँपर भी श्रीरूप मञ्जरीको अबाध रूपमें प्रवेशकर सेवा करनेका अधिकार है, किन्तु श्रीललिता-विशाखाको वहाँ प्रवेशकी अनुमति नहीं है।

श्रील रूप गोस्वामी और श्रीरूप मञ्जरीके अवदानमें तारतम्य

ये श्रीरूप मञ्जरी ही श्रीमन्महाप्रभुकी लीलामें उनके परिकर श्रील रूप गोस्वामी प्रभु हैं। यद्यपि श्रीरूप मञ्जरी अत्यन्त उन्नत कोटिकी परिकर हैं, तथापि उनसे श्रील रूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य बहुत अधिक है। श्रीरूप मञ्जरी अनेक प्रकारसे श्रीमती राधिकाकी अन्तरङ्ग सेवाएँ तो करती हैं, किन्तु उन्होंने जगत्के जीवोंके लिए क्या किया? क्या उन्होंने कोई ऐसी पद्धति बतलायी जिससे हम जैसे साधारण जीव भी उस मञ्जरी भावको प्राप्तकर उसके अनुरूप श्रीमती राधिकाकी वैसी सेवाएँ कर सकें? यह श्रीरूप मञ्जरीने नहीं बतलाया। किसने बतलया? श्रीरूप गोस्वामीने।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके लिए श्रील रूप गोस्वामीने व्रजकी लीला-स्थलियोंको प्रकट किया, श्रीगोविन्ददेवके श्रीविग्रहको जगत्में प्रकाशित किया और भक्ति-ग्रन्थोंकी रचना की, यथा—भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्जवलनीलमणि, विदग्ध-माधव, ललित-माधव, अलङ्कारकौस्तुभ, हंसदूत इत्यादि अनेक ग्रन्थ उन्होनें लिखे, जिनसे आज भी हम श्रीराधाकृष्णकी भक्तिके परम उन्नत रहस्योंको जान रहे हैं। इन ग्रन्थोंकी रचनाकर श्रील रूप गोस्वामीने समस्त

जीवोंका परम कल्याण किया है तथा यह बतलाया है कि हम उस परम रसमयी, 'भावोल्लासमयी रति'से युक्त मञ्जरी भावको प्राप्त कर सकते हैं। उनका यह योगदान अनुपम एवं अद्भुत है। हम आज भी श्रील रूप गोस्वामीकी दयाको अनुभव करते हैं। मेरे विचारसे जो समस्त रूपानुग वैष्णव हैं, और जो रागानुग वैष्णव हैं तथा अन्य सम्प्रदायोंके जो वैष्णवगण हैं, वे सभी श्रील रूप गोस्वामी प्रभुके चिर ऋणी हैं और रहेंगे। अतएव श्रील रूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य श्रीरूप मञ्जरीसे अधिक है।

श्रीनाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल' की टीकामें किसी भक्तने श्रील रूप गोस्वामी प्रभुकी महिमाका कीर्तन करते हुए लिखा है—

यङ् कलि रूप शरीर न धरत।
तङ् व्रज-प्रेम-महानिधि कुठरीक, कोन कपाट उघाड़त॥

यदि श्रील रूप गोस्वामी इस कलियुगमें आविर्भूत नहीं होते तो व्रजप्रेमरूपी महानिधिकी कोठरीके द्वारको कौन खोलता? अर्थात् व्रजप्रेमके विषयमें कौन जान पाता?

को जानत, मथुरा-वृन्दावन,
को जानत व्रज-नीत।
को जानत, राधा-माधव-रति,
को जानत सोई प्रीत॥

यदि श्रील रूप गोस्वामी नहीं आते तो वृन्दावन-मथुराकी महिमा और तत्त्वको कौन जान पाता? एवं कौन ही व्रजकी नीतिको जान पाता? श्रीकृष्णके प्रति श्रीराधा तथा व्रजगोपियोंकी जो प्रीति है, कृष्णके प्रति जो उनका औपपत्य भाव है, जिसके द्वारा कृष्ण गोपियोंके वशीभूत हो जाते हैं, उसे जगत्वासियोंको कौन बतलाता? यह श्रील रूप गोस्वामीकी कृपाका ही परिणाम है कि इन विषयोंको आज भक्त स्वयं जान रहे हैं एवं अन्योंको भी जना रहे हैं। इसलिए भी श्रील रूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य श्रीरूप मञ्जरीसे अधिक है।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी द्वारा श्रीरूप मञ्जरीका अद्भुत वैशिष्ट्य प्रकाश

श्रील रघुनाथदास गोस्वामी अपने शिक्षा गुरु श्रील रूप गोस्वामीको प्रणाम करते हुए कहते हैं—

त्वं रूपमञ्जरि सखि प्रथिता पुरेऽस्मिन्
पुंसः परस्य वदनं नहि पश्यसीति।
बिम्बाधरे क्षतमनागत-भर्तृकाया
यत्ते व्यधायि किमुतच्छुकपुङ्गवेन॥

(विलापकुसुमाञ्जलि १)

इसका संक्षेपमें यही तात्पर्य है, "हे सखि! हे रूप मञ्जरि! तुम इस व्रजमण्डलमें सतीके रूपमें प्रसिद्ध हो, किसी परपुरुषका मुख तक तुम दर्शन नहीं करती हो, अतः पतिकी अनुपस्थितिमें तुम्हारे रक्तिम अधरपर यह जो क्षत चिह्न दिख रहा है, क्या किसी शुक पक्षीने ऐसा किया है?"

यहाँ श्रील रघुनाथदास गोस्वामी श्रील रूप गोस्वामीकी वन्दना करते हुए एक अत्यन्त गम्भीर भाव प्रस्तुत करते हुए मञ्जरी भावकी मधुरताका इङ्गित प्रदान कर रहे हैं—"हे सखि! हे रूप मञ्जरि! तुम्हारे अधरपर यह क्षतचिह्न कहाँसे आया? क्या किसी शुक पक्षीने काटा है?" श्रीरूप मञ्जरी इत्यादि मञ्जरियाँ कृष्णसे प्रत्यक्ष रूपसे नहीं मिलती। तब उनके अधरपर क्षतचिह्न कैसे आया?

देखिए, इसका कारण यह है कि श्रीमती राधिकाके साथ श्रीरूप मञ्जरीकी जितनी अधिक तदात्म्यता है, उस प्रकारकी तदात्म्यता श्रीललिता-विशाखा आदि सखियोंकी नहीं है। इसलिए एकान्तमें भी श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाके साथ जो-जो विलास करते हैं, उन सभीका अनुभव और उस-उस विलासके चिह्न श्रीरूप मञ्जरीकी देहमें प्रस्फुटित हो जाते हैं। अतएव जब श्रीकृष्णने निभृत निकुञ्जमें श्रीमती राधिकाका अधरामृत पान किया, उसका चिह्न श्रीरूप मञ्जरीके अधरपर प्रकाशित हो गया। यही श्रीरूपादि मञ्जरियोंका अति अद्भुत वैशिष्ट्य है।

श्रीकवि कर्णपूर द्वारा श्रील रूप गोस्वामीकी महिमाका गान

श्रीकवि कर्णपूरने श्रील रूप गोस्वामीके चरित्रका वर्णन करते हुए उनके विषयमें यह श्लोक कहा है—

प्रियस्वरूपे दयितस्वरूपे
प्रेमस्वरूपे सहजाभि रूपे
निजानुरूपे प्रभुरेकरूपे ततान
रूपे स्वविलास रूपे॥

(श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ९/३०)

प्रियस्वरूपे—जिस प्रकार श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय परिकर हैं, उसी प्रकार ही श्रील रूप गोस्वामी भी श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय हैं, अथवा श्रील रूप गोस्वामी श्रीस्वरूप दामोदर प्रभुके अत्यन्त प्रिय हैं; **दयितस्वरूपे**—श्रील रूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके अत्यन्त प्रिय होनेके समस्त गुणोंसे युक्त

हैं; **प्रेमस्वरूपे**—श्रील रूप गोस्वामी प्रेमके ही स्वरूप अथवा मूर्तिमान प्रेम हैं; **सहजाभि रूपे**—जो सहज ही मनोरम रूपविशिष्ट हैं अर्थात् जिनका रूप (सौन्दर्य) एवं सभी गुण स्वाभाविक हैं; **निजानुरूपे**—श्रील रूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके ही अनुरूप हैं अर्थात् प्रेम-प्रचारादि कार्योंमें वे श्रीमन्महाप्रभुके ही तुल्य हैं; **प्रभुरेकरूपे**—श्रीमन्महाप्रभुके समान ही उनका रूप है; **स्वविलासरूपे**—ऐसे अपने विलासस्वरूप श्रीरूप गोस्वामीके हृदयमें; **ततान रूपे**—श्रीमन्महाप्रभुने प्रेरणा देकर भक्तिरसका विस्तार किया था जिससे उन्होंने अनेक भक्ति-शास्त्रोंकी रचना की।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ही श्रीरूप गोस्वामीकी प्रत्येक रचनाके मूल स्रोत

अपने मनोऽभीष्टको पूर्ण करानेके लिये श्रीमन्महाप्रभुने प्रयागमें श्रील रूप गोस्वामीको दस दिन शिक्षा प्रदानकर उनपर कृपा की थी और उनमें अपनी शक्तिका सञ्चार करते हुए कहा था—

पारापार-शून्य गभीर भक्तिरस-सिन्धु।
तोमाय चाखाइते तार कहि एक 'बिन्दु'॥

चै.च.म.(१९/१३७)

"भक्तिरसरूपी सिन्धु आर-पार रहित और अत्यन्त गहरा है। तुम्हें उसका स्वाद चखानेके लिये मैं उस विशाल सिन्धुकी एक बिन्दुकी व्याख्या कर रहा हूँ।"

पुरीधाममें एक दिन जब श्रीमन्महाप्रभुने सभी भक्तोंके साथ श्रीहरिदास ठाकुरके वासस्थान पर आकर श्रील रूप द्वारा रचित श्लोकोंका श्रवण किया, तब श्रीराय रामानन्द द्वारा श्रील रूपके कवित्वकी हृदयसे अत्यधिक प्रशंसा किये जानेपर स्वयं श्रीमन्महाप्रभुने सभी भक्तोंसे यह अनुरोध किया—

सबे कृपा करि' इँहारे देह एइ वर।
व्रजलीला-प्रेमरस जेन वर्णे निरन्तर॥

चै.च.अ. (१/१९९)

"हे नित्यानन्द प्रभु! हे अद्वैत आचार्य! हे सार्वभौम भट्टाचार्य! हे राय रामानन्द! हे स्वरूप दामोदर! आप सभी रूपपर कृपा करके इसको यही वर प्रदान कीजिये जिससे यह मेरे हृदयके भावोंको जानकर निरन्तर व्रजलीला-प्रेमरसका वर्णन करके मेरे मनोऽभीष्टको पूर्ण कर सके।"

अतएव श्रील रूप गोस्वामीकी लेखनी द्वारा प्रस्तुत की गयी प्रत्येक रचनाका मूल स्रोत स्वयं श्रीमन्महाप्रभु हैं। ये सभी भाव श्रीमन्महाप्रभुके हृदयसे निकलकर श्रीरूपके हृदयमें प्रेरणाके रूपमें प्रस्तुत हुए और उनके रचित काव्योंके रूपमें जगत्में प्रकटित हुए। अतएव, श्रीरूप द्वारा कथित प्रत्येक वचन कितना प्रामाणिक होगा, आप लोग स्वयं ही यह विचार कर सकते हैं!

श्रीरूप-सनातनको व्रजमें भेजनेका एक कारण

एक विशेष तथ्य है। श्रीमन्महाप्रभु एक बार वृन्दावन आये थे और कुछ दिन व्रजमें रहनेके पश्चात् शीघ्र ही पुरी लौट गये। उन्होंने श्रील रूप एवं श्रील सनातन गोस्वामीको व्रजमें भेजा। स्वयं नहीं रहकर उन दोनोंको वहाँ भेजनेका क्या कारण था? श्रीमन्महाप्रभु स्वयं व्रजमें अधिक समय नहीं रहे, क्योंकि यहाँ रहनेपर गोवर्धनमें, यमुनाके तटपर सर्वत्र ही उन्हें गोपियोंके भावोंका, विशेषकर श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णकी व्रजमें हुई मधुर लीलाओंका स्मरण होगा तथा श्रीराधाके भाव और अङ्गकान्तिको धारण किये हुए शचीनन्दन श्रीगौरहरिका भाव विलुप्त होकर उनमें 'मैं कृष्ण हूँ'—यह भाव उदित हो जायेगा। इस भावके उदित होनेकी आशङ्कासे ही श्रीमन्महाप्रभु व्रजसे शीघ्र पुरी लौट गये। श्रीकृष्णका भाव प्रकाशित होनेसे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीराधाके भावोंका आस्वादन और रागमार्ग-भक्तिका प्रचार—ये दोनों कार्य जो कि श्रीकृष्णके श्रीगौरहरिके रूपमें आविर्भूत होनेके प्रधान उद्देश्य थे—उनकी पूर्ति सम्भवपर नहीं हो पाती।

श्रीवृन्दावन श्रीश्रीराधा-कृष्णकी विहार-भूमि है। जिस प्रकार श्रीकृष्णने श्रीउद्धवसे कहा था, "यद्यपि अभी मैं मथुरामें हूँ, परन्तु यहाँ मैं आंशिक रूपमें ही हूँ, पूर्ण रूपसे तो मैं व्रजमें ही निवास करता हूँ। वहाँ जाओ और इसका अनुभव करो।" इसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूप-सनातनसे कहा, "यद्यपि मैं यहाँ पुरीमें तो हूँ, परन्तु पूर्णरूपसे मैं वहीं व्रजमें ही हूँ।" और उन्हें चार सेवाकार्योंका दायित्व देकर व्रजमें भेज दिया।

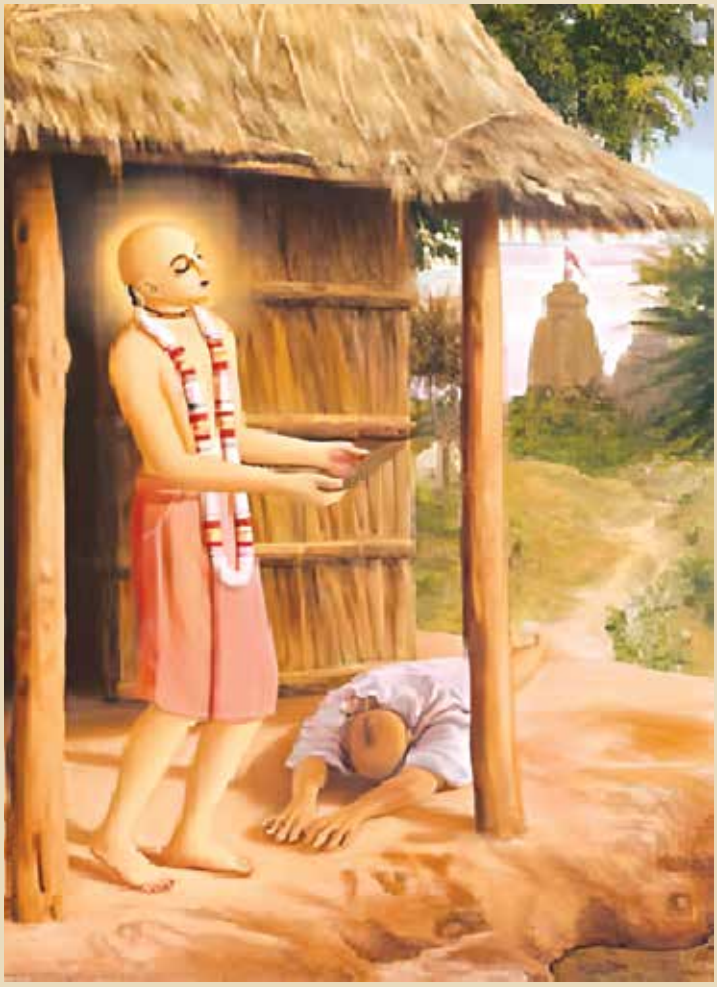

श्रील रूप गोस्वामी द्वारा श्रीमन्महाप्रभुके स्वरूपका जगत्में प्रकाश

एक बात और, श्रील रूप गोस्वामीने ही सबसे पहले यह घोषणा की थी कि श्रीराधाके भाव और अङ्गकान्तिको अङ्गीकार करके स्वरूपतः श्रीकृष्ण ही श्रीशचीनन्दनके रूपमें आविर्भूत हुए हैं, अर्थात् श्रीशचीनन्दन कोई और नहीं, स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं, जो श्रीराधाके भाव और कान्तिको लेकर प्रकटित हुए हैं।

एक दिन पुरीधाममें श्रीराय रामानन्दने श्रील रूप गोस्वामीसे श्रीविदग्धमाधव नाटकके नान्दी श्लोकका पाठ

करनेके लिये कहा। श्रीमन्महाप्रभुके साक्षात् उपस्थित होनेके कारण श्रीरूप लज्जावशतः उस श्लोकका उच्चारण नहीं कर रहे थे। स्वयं श्रीमन्महाप्रभुके कहनेपर तथा समस्त भक्तोंके पुनः-पुनः अनुरोध करनेपर कुछ सङ्कोचवशतः ही श्रील रूप गोस्वामीने यह श्लोक कहा—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्ब सन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

विदग्धमाधव (१/२)

[जिस वस्तुका दान जगत्को चिरकाल तक अन्य किसीके द्वारा नहीं किया गया, उसी सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वलरस प्रधाना निजभक्तिकी शोभा (मञ्जरी भाव) का दान करनेके लिये जो कलिकालमें अत्यन्त करुणापूर्वक आविर्भूत हुए हैं, सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान वे शचीनन्दन श्रीगौरहरि तुम्हारे हृदयमें नित्यकालके लिये स्फूर्ति प्राप्त करें।]

अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी
रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।
रुचं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥

(द्वितीय चैतन्याष्टक, श्रीरूप गोस्वामी)

[जिन कौतुकी (रसिक) श्रीकृष्णने अपने प्रणयिजनों—व्रज वनिताओंके अनिर्वचनीय अपार मधुररसविशिष्ट भावका अपहरण कर लिया है और स्वयं उस भावको ग्रहण करके उसका आस्वादन करनेके उद्देश्यसे श्रीराधाकी अङ्गकान्तिको स्वीकारकर अपनी घनश्याम अङ्गकान्तिको ढक दिया है, चैतन्याकृतिमें प्रकटित हुए वे श्रीगौराङ्गदेव हमारे प्रति विशेष कृपा करें।]

श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दको श्रीमन्महाप्रभुने पूर्वमें रसराज महाभाव स्वरूप दिखलाया था। तपनमिश्रको कृष्ण स्वरूप दिखलाया था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको षड्भुज रूप दिखलाया था। किन्तु इनमेंसे किसीने भी यह घोषणा नहीं की कि श्रीमन्महाप्रभु ही स्वयं कृष्ण हैं, क्योंकि श्रीमन्महाप्रभुने इन सभीको ऐसा निर्देश दिया हुआ था, "अभी आप इस विषयमें किसीसे चर्चा मत करना कि मैं कौन हूँ। समय आनेपर यह स्वयं प्रकट होगा।" इसीलिए उन लोगोंने श्रीमन्महाप्रभुकी भगवत्ताके विषयमें किसीसे कुछ नहीं कहा।

परन्तु श्रील रूप गोस्वामीने स्वरचित 'विदग्धमाधव' नाटकके नान्दीमुखी अर्थात् आनन्द उत्पन्न करनेवाले मङ्गलाचरणमें उपरोक्त 'अनर्पितचरीं चिरात्' श्लोक कहा। इस श्लोकमें श्रील रूप गोस्वामीने यह विशेष रूपसे स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि हरि श्रीकृष्ण ही श्रीराधा-भाव-कान्तिके द्वारा देदीप्यमान श्रीशचीनन्दन गौरहरि हैं।

'शुनि' प्रभु कहे,—'एइ अति स्तुति हैला'।

चै. च. अ. (१/१३१)

श्रीमन्महाप्रभुने जब यह श्लोक सुना तो कहा कि यह तो अत्यन्त अधिक स्तुति हो गयी है।

सब भक्त-गण कहे श्लोक शुनिया।
"कृतार्थ करिला सबाय श्लोक शुनाञा॥"

चै. च. अ. (१/१३३)

श्रील रूप गोस्वामी द्वारा उच्चारित उपरोक्त श्लोकको सुनकर सभी उपस्थित भक्तोंने आनन्दित होकर कहा—"हे रूप! तुमने यह श्लोक सुनाकर हम सबको कृतार्थ कर दिया।"

दूसरी बात, ललितमाधवमें इष्टदेवके वर्णन-प्रसङ्गमें नान्दीमुखी श्लोकमें श्रील रूप गोस्वामीने कहा है—

निजप्रणयितां सुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौ
किरत्यलमुरीकृतद्विज कुलाधिराजस्थितिः।
स लुञ्चित-तमस्ततिर्मम शचीसुताख्यः शशी
वशीकृतजगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु॥

ललितमाधव (१/४)

[अर्थात् जो भूतलपर उदित होकर अपनी उज्जवल नामक प्रणय-रस-सुधाका विस्तार कर रहे हैं, जो द्विजकुलके सम्राटके रूपमें विख्यात हैं, जो जगत्के समस्त अन्धकार समूहको दूर करनेवाले हैं, जगत्वासियोंके मनको वशीभूत करनेवाले वे श्रीशचीनन्दन रूपी चन्द्र मेरा मङ्गल विधान करें।]

यह श्लोक सुनकर श्रीमन्महाप्रभुने रोषाभास व्यक्त करते हुए कहा—

काँहा तोमार कृष्णरसवाक्य-सुधासिन्धु।
तार मध्ये मिथ्या केने स्तुति-क्षारबिन्दु॥

चै. च. अ. (१/१७९)

"हे रूप! कहाँ तो तुम्हारा यह काव्य कृष्णरसपूर्ण सुधासिन्धु अर्थात् अमृत-समुद्र है, तब इसमें जो हमारी मिथ्या स्तुति की है, यह क्षार है जो थोड़ा-सा मिलानेसे ही अमृतको दूषित कर देता है। यह क्षार तुमने उसमें क्यों मिला दिया? तब श्रीराय रामानन्द कहते हैं—

राय कहे,—"रूपेर काव्य अमृतेर पूर।
तार मध्ये एक बिन्दु दियाछे कर्पूर॥"

चै. च. अ. (१/१८०)

श्रीरामानन्द रायने कहा—यह रूपका काव्य तो अमृतका पूर है, अर्थात् घना अमृत है और उसमें एक बिन्दु कर्पूर देकर रूपने उस अमृतके माधुर्यको, रसको, आस्वादनको हजारों गुणा बढ़ा दिया है। सभी भक्त यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामीने स्पष्ट रूपसे यह प्रकाशित किया कि श्रीमन्महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं, अथवा श्रीराधा-कृष्ण मिलित तनु हैं।

श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रागानुगा भक्तिका संस्थापन

श्रीमन्महाप्रभुके प्राकट्यसे पहले जगत्में केवलमात्र 'वैधी-भक्ति' ही विद्यमान थी। श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमन्मध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बादित्य इत्यादि सभीने वैधी-भक्तिका ही प्रचार किया। वैधी-भक्तिके द्वारा अधिक-से-अधिक वैकुण्ठ तक जाया जा सकता है, इससे ऊपर नहीं। किन्तु श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिसे भक्ति-रस बनानेकी प्रक्रिया परिपूर्ण रूपसे बतलायी कि हृदयमें स्थायीभावके उदित होनेपर इस स्थायीभावके ऊपर सामग्री अर्थात् विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी भावोंका संयोग होनेपर यह कृष्णभक्तिरस बनता है। श्रील रूप गोस्वामीके ही अनुगत श्रील रघुनाथदास गोस्वामीने पुनः विस्तृत रूपसे बतलाया कि किस-किस सामग्रीका कितना भाग किस रूपमें मिश्रण करनेसे भक्तिरस होता है।

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामीने इन सभी सिद्धान्तोंका बहुत अच्छी प्रकारसे विवेचन करके 'रागानुगा-भक्ति'की प्रतिष्ठा की तथा उन्हींके आनुगत्यमें श्रील रघुनाथदास गोस्वामीने 'रूपानुगा-भक्ति'की स्थापना की।

श्रील रूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्ट संस्थापक

श्रील रूप गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टको जानते थे, इसका प्रमाण क्या है? श्रीमन्महाप्रभुने रथयात्राके समय श्रीजगन्नाथके रथके सामने भावमें विभोर होकर नृत्य करते हुए अपने हाथोंको उपर उठाकर उच्चस्वरसे काव्यप्रकाशका एक श्लोक पढ़ा—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥

चै. च. म. (१३/१२१)

[(एक प्राकृत नायिका अपनी सखीसे कह रही है—)हे सखि! जिसने कौमार-अवस्थामें रेवा नदीके तटपर मेरे चित्तका हरण किया था वही अब मेरे पति बने हैं, वह मधुमासकी

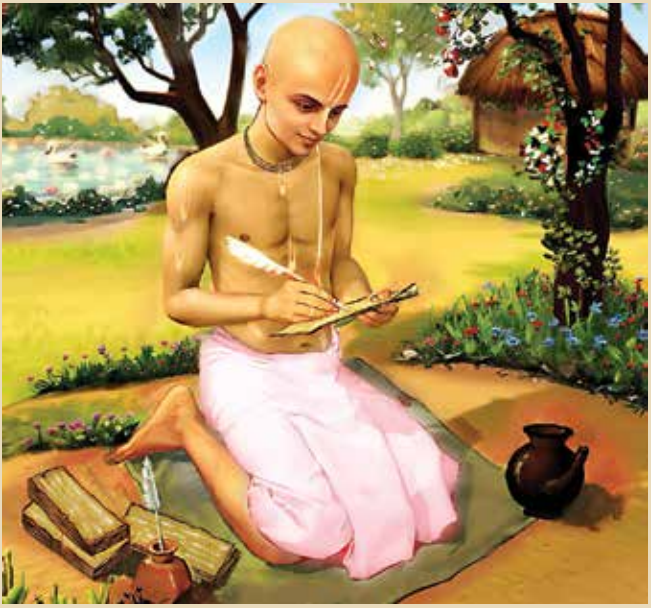

रात्रि भी उपस्थित है, विकसित मालती पुष्पोंकी सुगन्ध भी है, कदम्ब काननसे वायु भी मधुर रूपमें बह रही है, सुरत-लीलाके कार्य (नायकके सङ्गकी आकाङ्क्षा)में मैं वही नायिका भी उपस्थित हूँ, तथापि मेरा चित्त इस अवस्थामें सन्तुष्ट न होकर रेवाके तटपर विद्यमान वेतसी (बेंत) के वृक्षके तलके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है।]

श्रील रूप गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उच्चारित श्लोकको सुनकर उस श्लोकके मर्मार्थको प्रकाशित करनेवाले एक अन्य श्लोककी रचना की और उसे तालपत्र पर लिखकर रख दिया। श्रीमन्महाप्रभुने वह श्लोक पढ़ा—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥

चै. च. म. (१/७६)

[(श्रीराधिका अपनी किसी प्रिय सखीसे कह रही हैं—) हे सहचरि! जिन्होंने मेरे साथ वृन्दावनमें विहार किया था, मेरे वही अतिप्रय कृष्ण आज कुरुक्षेत्रमें मिलित हुए हैं। यद्यपि मैं भी वही राधा हूँ और हम दोनोंके मिलनका सुख भी वही है, तथापि इन श्रीकृष्णके द्वारा वनमें क्रीड़ा करते हुए मुरलीके पञ्चम स्वरके श्रवणके आनन्दसे आप्लावित कालिन्दीके पुलिनपर स्थित वनमें मिलनके लिये ही मेरा चित्त स्पृहा कर रहा है अर्थात् वहाँ जानेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है।]

इस श्लोकको पढ़नेके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुने विस्मित होकर वहीं उपस्थित श्रीस्वरूप दामोदरसे पूछा, "रूप हमारे मनकी बात कैसे जान गया? मैं जो कहना चाहता था वो इसने कैसे जाना?" तब श्रीस्वरूप दामोदरने कहा, "आपकी कृपासे ही कोई आपको जान सकता है। रूपने आपके मनके भावोंको जान लिया है, इसका अर्थ यही है कि आपकी रूपपर प्रचुर कृपा है।"

श्रील रूप गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टको जगत्में स्थापित किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुका मनोऽभीष्ट क्या है, जिसको श्रील रूप गोस्वामीने पूर्ण किया? इसको समझना अति आवश्यक है और वह है—गोपियों द्वारा अखिलरसामृत-सिन्धु श्रीकृष्णकी पारकीय भावसे सेवाकी परिपाटीको जगत्में स्थापित करना।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमार्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर)

[भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनके समान ही वैभवयुक्त श्रीधाम वृन्दावन हमारे आराध्य हैं। व्रजवधुओंने जिस भावसे कृष्णकी

उपासना की थी, वह उपासना पद्धति ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है और इस सिद्धान्तके प्रति ही हमारा परम आदर है।]

'*रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता*'—कृष्णके प्रति व्रजवधुओं—गोपियोंके पारकीय भावका श्रीमद्भागवतमें वर्णन किया गया है। समस्त वैष्णव आचार्यों यथा—श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बादित्य इत्यादि सभीने उसकी व्याख्या भी की है। परन्तु श्रील रूप गोस्वामीने व्रजगोपियोंके भावोंका जैसा सुमधुर वर्णन किया है, वैसा वर्णन किसी अन्यने नहीं किया है। श्रीमन्महाप्रभुके प्रकटसे पूर्व प्रायः सभी लोग पारकीय भावसे उपासनाको घृणित समझते थे। आधुनिक समाज गोपियोंके पारकीय भावको घृणाकी दृष्टिसे देखता है, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु इसी उपासना पद्धतिको ही देनेके लिये जगत्में आये थे। '*समर्पयितुं उन्नत उज्ज्वल रसां स्वभक्तिश्रियं*'—यहाँ 'स्वभक्ति' 'स्व' अर्थात् श्रीराधाजीके हृदयमें कृष्णके प्रति जो गूढ़ भाव हैं और 'श्रियं' अर्थात् उस भावकी शोभा—मञ्जरी भाव। 'श्रीराधायाः प्रणयमहिमा' श्लोकमें वर्णित तीन भाव प्रदान

किये जाने योग्य नहीं, अपितु श्रीमन्महाप्रभु द्वारा स्वयं आस्वादनके लिये हैं। ऊपरोक्त मञ्जरी भावको प्रदान करनेके लिये श्रीमन्महाप्रभुकी प्रेरणासे श्रील रूप गोस्वामीने प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके बलपर विद्वत् और भक्त समाजमें गोपियोंके पारकीय-भावकी उत्कृष्टता तथा परम पवित्रताको प्रतिष्ठितकर श्रीचैतन्य मनोऽभीष्टको पूर्ण किया है।

'भक्तिरसामृत सिन्धु' ग्रन्थमें श्रील रूप गोस्वामी द्वारा शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य रसोंके साथ मधुररसका वर्णन संक्षेपमें किया गया है। कारण—प्रथमतः दास्य, सख्य और वात्सल्य रसके साधकोंके लिये भी यह मधुररस दुरूह और अनुपयोगी है, क्योंकि इस मधुररसके उपासक विरले ही होते हैं। द्वितीयतः, अनेक व्यक्तियोंकी मधुररसमें रुचि रहनेपर भी उनके पूर्व जन्मके तथा इस जन्मके संस्कार नहीं रहनेसे उनके लिये भी यह उपयोगी नहीं हो पाता है। तृतीयतः, इनके अतिरिक्त अनेक प्रकारके अवान्तर स्वभाववाले व्यक्ति हैं। ऐसे विविध प्रकारके व्यक्तियोंके लिये भी इस परमोच्च रागमार्गका रहस्य अपरिचित रहनेसे उनका चित्त वैधी-भक्तिमें ही आविष्ट रहता है, अतः उनके लिये भी यह उपपति भावसे उपासना पद्धतिका मार्ग अनुपयोगी एवं परम दुरूह है। इसलिये श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृत-सिन्धुमें मधुररसका संक्षेपमें वर्णनकर उज्ज्वलनीलमणिमें इसका विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। रागमार्गका विशेषतः पारकीय भावका वर्णन करना ही उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थका प्रधान विषय है। अतः विद्वत् समाजमें उन्नत-उज्ज्वल पारकीय-भावकी प्रतिष्ठा श्रील रूप गोस्वामीका एक परम उन्नत अवदान एवं वैशिष्ट्य है।

यद्यपि यह बात ठीक है कि साधारणतः लोक-समाजमें जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर दूसरे व्यक्तिके साथ जाती है, वह कुलाङ्गना है और उसे नरकमें जाना पड़ता है। लोग भी उसको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। किन्तु यहाँ पर सर्वेश्वरेश्वर, परब्रह्म, सर्वशक्तिमान अखिल रसामृतसिन्धु कृष्ण ही नायक है एवं गोपियाँ और कोई नही अपितु उन श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति श्रीमती राधिकाका ही प्रकाश हैं। अतः उनका मिलन कदापि घृणित या नरकगामी नहीं हो सकता।

आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभाविताभिस्ताभिर्य एव निज-रूपतया कलाभिः।

ब्रह्मसंहिता (५/३७)

[आदिपुरुष गोविन्द आनन्द-चिन्मयरसके द्वारा प्रतिभावित, अपने चिद्-रूपके अनुरूप, चिन्मय रसस्वरूप, चौंसठ कलाओंसे युक्त, ह्लादिनी-शक्ति-स्वरूपा श्रीराधा और उनकी कायव्यूह-स्वरूपा सखियोंके साथ गोलोक धाममें निवास करते हैं।]

यहाँ 'निजरूप' अर्थात् श्रीराधिका और 'कलाभिः' अर्थात् गोपियाँ—उन श्रीराधिकाका अंश, उनका वैभव-प्रकाश हैं। ये गोपियाँ ही यहाँ नायिका हैं, तब कृष्ण और गोपियोंके परस्पर विहारमें दोषकी सम्भावना ही कहाँ है?

श्रील रूप गोस्वामीने श्रीमद्भागवतके रास पञ्चाध्यायीके श्लोकोंको उद्धृत करके यह प्रमाणित किया है कि गोपियोंका कृष्णके प्रति उपपति भाव है, यथा—**'शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिद्'** (श्रीमद्भा. १०/२९/६)—अर्थात् श्रीकृष्णकी वंशीकी ध्वनि सुनते ही कोई गोपी जो अपने पतिकी सेवा कर रही थी, वह सेवा छोड़कर कृष्णसे मिलनेके लिये वंशी-ध्वनिकी दिशाकी ओर दौड़ चली। **'ता वार्यमाणाः पतिभिः'** (श्रीमद्भा. १०/२९/८)—अर्थात् उनमेंसे कुछ गोपियोंके पतियोंने उन्हें जानेसे मना किया तो भी वे चल पड़ी। कुछ गोपियोंके पतियोंने उन्हें घरोंमें बन्द कर दिया, वे बाहर नहीं निकल पायीं तथा उन्होंने विरह-अग्निमें अपनी देह त्याग दी एवं श्रीकृष्णके निकट पहुँच गयीं।

जब गोपियाँ कृष्णके निकट पहुँच गयीं, तब कृष्णने उनसे कहा—"हे गोपियों! तुम यहाँ आयीं, तुमने मेरा दर्शन कर लिया, वनकी शोभा देख ली, ठीक है, बहुत अच्छा, अब तुम सभी अपने घरोंमें लौट जाओ। अपने पतियोंकी सेवा करो, नहीं तो नरकगामी होना पड़ता है। पति लंगड़ा, लूला, निर्धन, रोगग्रस्त, बुरे स्वभाववाला, भाग्यहीन अथवा वृद्ध, जैसा भी हो, किन्तु स्त्री यदि उसको छोड़ेगी तो उसको नरक जाना होगा।" यहाँ कृष्ण स्वयं गोपियोंसे कह रहे हैं कि 'तुम अपने पतियोंके पास जाओ', इसलिए यहाँ गोपियोंका कृष्णके प्रति उपपति भाव सिद्ध होता है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।

श्रीमद्भा. (१०/३१/१६)

यहाँ भी यही कहा गया है कि गोपियोंने कृष्णसे मिलनेके लिये अपने-अपने पतियोंको, पुत्रोंको, भाई एवं बन्धुओं, सबको त्यागकर दौड़ चली।

श्रीमद्भागवतके अन्तर्गत गोपी-गीत, भ्रमर-गीत, वेणु-गीत इत्यादि समस्त प्रसङ्गोंके प्रत्येक श्लोकमें ही गोपियोंके पारकीय भावका निरूपण है। विशेषकर श्रीउद्धव स्वयं कहते हैं—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

श्रीमद्भा. (१०/४७/६१)

[जिन्होंने दुस्त्यज्य पति-पुत्रादि आत्मीय स्वजन, वैदिक मर्यादा एवं लोक-लज्जा, सबका परित्याग करके श्रुतियोंके द्वारा खोजे जानेवाले मुकुन्द श्रीकृष्णकी प्रेमभक्तिके पथको अङ्गीकार किया है, अहो! मैं इस वृन्दावनमें उन गोपियोंकी चरणरेणुसे स्नात (अभिषिक्त) गुल्म(झाड़ी), लता अथवा औषधिमें-से किसी भी एक स्वरूपमें जन्म प्राप्त करूँ तो मेरे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात होगी।]

यहाँ भी यही कहा गया है कि गोपियाँ अपने आर्यपथका अर्थात् पतियोंका, लोकलज्जाका परित्यागकर और गुरु (वृद्ध) जनोंकी आज्ञाका अनादरकर श्रीमुकुन्दके उन श्रीचरणोंकी ओर दौड़ पड़ी जिनको श्रुतियाँ भी आज तक प्राप्त नहीं कर सकी हैं।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

श्रीमद्भा. (१०/३२/२२)

[श्रीकृष्ण गोपियोंसे कह रहे हैं—हे वल्लभाओ! मेरे साथ तुम्हारा जो संयोग है, वह निर्मल, निर्दोष एवं विशुद्ध प्रेममय है। तुम गोपियोंने दुर्जय गृह-शृंखलाओंका छेदनकर मुझसे प्रेम किया है, इसके लिये मैं देवताओंके समान दीर्घायु प्राप्त करके भी उसका प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तुम अपने सौम्य स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो, परन्तु मैं तो तुम्हारे इस प्रेमका सर्वदा ऋणी ही हूँ।]

यहाँ पर कृष्णने स्वयं ही कहा है कि 'दुर्जरगेहशृंखला' अर्थात् गोपियोंने गृहकी शृंखलाओं

अर्थात् पतिकी सेवा तथा अन्य नाना प्रकारकी सामाजिक शृंखलाओंको तोड़कर कृष्णकी सेवा की।

इस प्रकार शास्त्रोंमें यह देखा जाता है, और विशेषकर श्रीमद्भागवतके आधारपर यही प्रमाणित होता है कि गोपियोंका कृष्णके प्रति औपपत्य भाव अत्यन्त पवित्र है।

युक्ति द्वारा भी यही सिद्ध होता है, अर्थात् जबतक कृष्ण वृन्दावनमें थे तबतक वे द्विज-जातीय थे—उनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ था। वैदिक शास्त्रोंके अनुसार उस कालसे अभी वर्तमान काल तक यही प्रथा है कि द्विज-जातीयों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परिवारोंके बालकोंका विवाहसे पूर्व उपनयन संस्कार होना अवश्यम्भावी होता है। व्रजमें तो कृष्णका उपनयन हुआ नहीं तो फिर वहाँ विवाहकी सम्भवना ही कहाँ थी? इसलिए निष्कर्ष यही है कि व्रजमें रहने तक कृष्णका विवाह नहीं हुआ था।

दूसरी बात, विवाहके पश्चात् पत्नी पतिके साथ पतिके घर चली जाती है और वहींपर निवास करती है। उससे पुत्र आदि सन्तान उत्पन्न होती है। किन्तु श्रीराधिकाके विषयमें यह नहीं सुना जाता कि वे सब समय कृष्णके समीप नन्दभवनमें रहती थीं। हम ऐसा ही देखते हैं कि किसी कार्यवशतः रन्धन सेवा इत्यादिके लिए तो श्रीराधिका नन्दभवनमें जाती थीं, परन्तु सेवाके उपरान्त बरसाना अथवा जावटमें वापिस चली जाती थी। इसके अतिरिक्त, द्वारकामें निवासके समय श्रीकृष्णको अपनी सोलह हजार एक-सौ-आठ रानियोंमें प्रत्येकसे दस-दस पुत्र और एक-एक कन्या उत्पन्न हुईं, किन्तु यहाँ व्रजमें इतनी गोपियाँ थी, श्रीराधिका थीं, यदि श्रीकृष्णका इनसे विवाह ही हुआ था तब क्या इन गोपियोंमें-से किसी एकसे भी कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हो सका? इन सब तथ्योंपर भलीभाँति विचार करनेसे यही उचित प्रतीत होता है कि कृष्णका व्रजमें विवाह नहीं हुआ था।

इस प्रकारसे प्रबल युक्तियों एवं शास्त्र प्रमाणोंके आधारपर श्रील रूप गोस्वामीने गोपियोंकी पारकीय-भाव उपासनाको स्थापित किया और इसीके परिणाम स्वरूप विद्वान लोग अब इसको माननेके लिये बाध्य हुए कि "हाँ! गोपियोंका पारकीय-भाव शास्त्र-सम्मत है।"

श्रील रूप गोस्वामी—श्रीमद्भागवतके निगूढ़ विचारोंके प्रतिपादक

श्रीवृन्दावनमें किसी-किसी सम्प्रदायकी उपासनामें नित्य मिलन और विहारको ही स्वीकार किया जाता है। वे लोग कहते हैं कि "श्रीमती राधिका या गोपियोंका कृष्णसे मान नहीं होता, कृष्ण लीलामें अभिसार नहीं है, श्रीकृष्णका मथुरा-गमन नहीं है और श्रीराधाकृष्णका केवल नित्य-निकुञ्ज-विहार है।"

इसके सम्बन्धमें श्रील रूप गोस्वामीका कथन है—'धिक्कार है इनको! जिस समुद्रमें तरङ्गें नहीं हों, लहरियाँ नहीं हों, क्या उसका कोई वैशिष्ट्य होता है? भक्तिरसामृत यदि एक सिन्धु है तो उसमें लहरें या तरङ्गें तो अवश्य होंगी ही, अर्थात् उसमें मान रहेगा, अभिसार होगा, प्रवास होगा, उसमें विप्रलम्भ होगा, उसमें सम्भोग इत्यादि सभी लीलाएँ रहेंगी, अन्यथा प्रेम-वैचित्र्य ही कहाँ रहा?' अतः जो ऐसा मानते हैं कि श्रीराधाकृष्णका केवल नित्य मिलन है, उनको रस-शास्त्रका कोई ज्ञान नहीं है! उनको धिक्कार है!

भक्तिकी अति उत्तम परिभाषा प्रदान करना

एक विशेष बात यह है कि श्रील रूप गोस्वामीने जिस प्रकारसे भक्तिकी परिभाषा प्रदान की है, वह अभूतपूर्व और सर्वाङ्ग सुन्दर है—

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्मादि-अनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

भक्तिरसामृत सिन्धु (१/१/११)

[श्रीकृष्ण-प्रीतिकी स्पृहाके अतिरिक्त अन्य समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा

अनावृत्त, एकमात्र श्रीकृष्णके हितके लिए ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उन समस्त चेष्टाओंको उत्तमा भक्ति कहते हैं।]

श्रीमद्भागवतमें '*स वै पुंसां परोधर्मो*' (१/२/२६) एवं '*मद्गुणश्रुतिमात्रेण*' (३/२९/११) श्लोकोंमें भक्तिकी परिभाषा दी गयी है। पराशर इत्यादि प्राचीन ऋषियोंने भी '*भक्ति सा परानुरक्तिरीश्वरे*' के माध्यमसे भक्तिकी परिभाषा लिखी है। अन्य वरिष्ट व्यक्तियोंने भी भक्तिकी परिभाषा लिखी है। किन्तु श्रील रूप गोस्वामीने उत्तमा भक्तिकी जो परिभाषा दी, श्रीमन्महाप्रभु उसे सुनकर चमत्कृत हो गए एवं वहाँपर उपस्थित जितने भी भक्तोंने इस परिभाषाको श्रवण किया, वे सभी श्रील रूप गोस्वामीकी प्रशंसा करने लगे। उसी प्रकारसे श्रील रूप गोस्वामीने श्रद्धासे आरम्भकर साधुसङ्ग, भजनक्रिया, अनर्थ-निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव, रूढ़, अधिरूढ़, मोहन महाभाव, मादन महाभाव इत्यादिका अपूर्व विश्लेषण किया है। उन्होंने भक्तिके इन सभी स्तरोंकी परिभाषा प्रदान की है, जो अन्यत्र कहीं भी किसी भी ग्रन्थमें उपलब्ध नहीं है। यहाँ तक कि हाव, भाव, हेला, किल-किञ्चित्, दिव्योन्माद, चित्रजल्प आदि भावोंकी भी परिभाषा उन्होंने दी है। श्रील रूप गोस्वामीसे पूर्व भक्तिरसकी इतनी सुन्दर और प्रामाणिक विवेचना ओर कहीं भी उपलब्ध या दृष्टिगोचर नहीं होती। जैसे श्रद्धा [श्रीरूपानुग प्रवर श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने श्रद्धाकी परिभाषा दी है] यथा—

श्रद्धा त्वन्योपायवर्जं भक्ति-उन्मुखी
चित्त-वृत्ति-विशेषः।

आम्नाय सूत्र (५७)

[अर्थात् कर्म, ज्ञान, योग, तपस्यादि अन्यान्य उपायोंको छोड़कर जीवकी भक्ति-उन्मुखी विशेष चित्तवृत्तिका नाम ही श्रद्धा है।]

श्रील रूप गोस्वामीने और भी बतलाया कि 'कृष्ण-सेवाकी वासना' ही श्रद्धाका स्वरूप-लक्षण है और उसका बाह्य-लक्षण है शरणागति।

साधन-भक्तिकी परिभाषा श्रील रूप गोस्वामीने इस प्रकारसे दी है—

कृति-साध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्य-सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२)

[श्रवण, कीर्तन आदिके रूपमें जड़ इन्द्रियोंकी चेष्टाओं द्वारा जो भक्ति 'साध्य'—भावभक्तिको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे अनुष्ठित होती है, उसे 'साधन-भक्ति' कहते हैं। भावभक्तिसे प्रेमभक्तिकी अवस्था प्राप्त होती है। प्रेमभक्ति जीवात्माका नित्यसिद्ध भाव है। जीवके मायाबद्ध होनेसे वह भाव वर्तमान समयमें लुप्तप्राय है। वह नित्यसिद्ध भाव ही हृदयमें प्रकट होने योग्य है और इस नित्यसिद्ध भावको चित्तमें उदित करानेकी चेष्टाका नाम ही साधन है। यही साधन-भक्ति पक्वावस्थामें क्रमशः भावभक्ति और तत्पश्चात् प्रेमभक्तिके रूपमें प्रकटित होती है।]

इन्द्रियोंके द्वारा हम जो साधन करते हैं यदि उसका लक्ष्य भावभक्तिको प्राप्त करना न हो तो वह साधन-भक्ति नहीं कहलाती है। अतः हृदयमें अवस्थित जो नित्यसिद्ध भाव है, जो अभी अविद्याके द्वारा अच्छादित है, उसको प्रकट कर देना ही साधन-भक्ति है।

इसी प्रकारसे श्रील रूप गोस्वामीने रति या भावकी परिभाषा भी दी है—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/३/१)

[वह भक्ति जो विशुद्धसत्त्वमय प्रेमरूपी सूर्यकी किरणके समान है तथा भगवत् प्राप्तिकी अभिलाषा—रुचिके द्वारा जो चित्तको द्रवित कर देती है, उसका नाम 'भावभक्ति' है, अर्थात् प्रेमभक्तिकी प्रारम्भिक स्थिति ही भाव है।]

'शुद्ध-सत्त्व-विशेषात्मा'—बद्धजीव मिश्र-सत्त्व हैं और मुक्तजीव शुद्धसत्त्व हैं। किन्तु शुद्ध-सत्त्व-विशेष अर्थात् 'विशुद्ध सत्त्व'—कृष्णका श्रीअङ्ग, वृन्दावन धाम, परिकर आदि ये सब विशुद्धसत्त्व हैं। इसके अतिरिक्त 'विशेष-आत्मा'का अर्थ है—आश्रय जातीय दास्य-सख्य-वात्सल्य और मधुरभावके परिकर अर्थात् इस विशुद्धसत्त्वमें श्रीराधाजीके कृष्णके प्रति भाव अथवा गोपियोंका भाव अथवा जो जिस रसका उपासक है उस रसके व्रजके परिकरोंका भाव। श्रीकृष्णके प्रति इन सबमें जो सेवा-वासना है, वही विशेषात्मा है। इनमें श्रीमती राधिकाजीका भाव ही सर्वोत्तम है। ऐसे व्रजके परिकरोंके आनुगत्यमें भजन करनेसे साधकके हृदयमें उनका जो भाव आता है और साधकके निज भावोंके साथमें तदात्म्य होता है, तब उसको शुद्ध-सत्त्व-विशेषात्मा कहते हैं। **प्रेमसूर्यांशु साम्यभाक्**—प्रेमरूपी सूर्यकी किरणस्वरूप यह भाव है। **रुचिभिश्चित्तमासृणौ**—जो रुचिके द्वारा चित्तको अत्यन्त कोमल कर देता है।

श्रील रूप गोस्वामीने प्रेमकी परिभाषा दी है—

सम्यङ्-मसृणित-स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/४/१)

[भाव अत्यन्त गाढ़ताको प्राप्त होकर जब भलीभाँति चित्तको द्रवित कर उसमें श्रीकृष्णके प्रति अत्यधिक ममता उत्पन्न कर देता है एवं जो घनीभूत आनन्दस्वरूप है, प्रेमरसज्ञ व्यक्ति उसीको प्रेम कहते उन्होंने और भी बतलाया—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

उज्ज्वलनीलमणि (१४/६३)

[नायक-नायिकाकी परस्पर प्रीतिके ध्वंस होनेका कारण उपस्थित होनेपर भी सब प्रकारसे ध्वंसरहित, निश्चल रूपमें उनका जो भाव-बन्धन है, उसीको प्रेम कहा जाता है।]

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/४/२)में उद्धृत नारदपञ्चरात्रके वचन

[अन्य सभीके प्रति ममता रहित होकर एकमात्र विष्णु अर्थात् कृष्णमें प्रेम-सङ्गत ममताको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदि महाजन प्रेमभक्ति कहते हैं।]

श्रील रूप गोस्वामीने बतलाया कि प्रेमका लक्षण है कि प्रेमके ध्वंस होनेका कारण उपस्थित होनेपर भी प्रेम और बढ़ता जाता है। विष्णुमें ममता हो, किन्तु वह ममता अनन्य-ममता—प्रेम-सङ्गत ममता हो। बिना ममताके प्रेम हो नहीं सकता। वजवासियोंकी ममता कृष्णमें है, क्योंकि प्रेममें ममता ही प्रधान है।

इस प्रकारसे श्रील रूप गोस्वामीकी अनन्त महिमा और अनन्त वैशिष्ट्योंके महासागरके तटपर बैठकर उसकी लहरोंके जो छींटे आ रहे हैं, मैंने उसके एक छींटेका वर्णन करनेका प्रयास किया है। जब तक सूर्य-चन्द्र रहेंगे, तब तक कोई भी श्रील रूप गोस्वामीकी महिमाका वर्णन सम्पूर्ण नहीं कर सकता।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

धारावाहिक

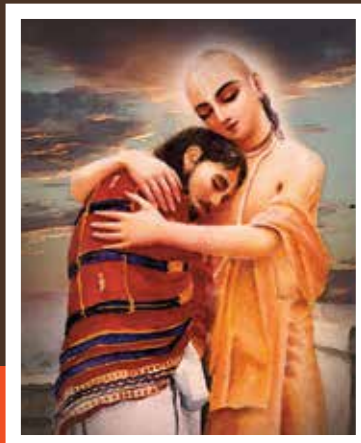

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष-२०, संख्या—५-१२ से आग)

श्रील रघुनाथदासका गृहत्याग

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा पाकर श्रीरघुनाथदास अपनेको कृतार्थ मानने लगे। अब श्रीरघुनाथदासको पूर्ण विश्वास हो गया था कि अवश्य ही उन्हें श्रीमन्महाप्रभुके चरणकमलोंका आश्रय प्राप्त होगा। उस दिनसे उन्होंने अपने घरके भीतर जाना बन्द कर दिया। अब वे घरके बाहर दुर्गा-मण्डप (कथा-कीर्तन-पूजाके उद्देश्यसे बनाये गये मञ्च)में ही रहते थे। भोजन-शयन आदि भी वे वहीं पर करते थे। पहरेदार चौबीस घण्टे दुर्गामण्डपके बाहर बहुत ही सावधानीसे पहरा देते थे। श्रीरघुनाथदास सर्वदा वहाँसे भागनेका उपाय सोचते रहते थे। उन्हीं दिनों बङ्गालसे भक्तोंका समूह श्रीमन्महाप्रभुका दर्शन करनेके लिए नीलाचल जा रहा था। श्रीरघुनाथदास उनके साथ नहीं जा सकते थे, क्योंकि वे जानते थे कि प्रायः सभी भक्त उनसे परिचित हैं, इसलिए उन भक्तोंके साथ जानेपर पकड़े जानेका भय था। किन्तु वे रात-दिन श्रीमन्महाप्रभुके विरहमें व्याकुल होकर उनके निकट जानेका उपाय सोचते रहते थे। एक दिन वे दुर्गामण्डपमें सो रहे थे तथा रात्रि समाप्त होनेमें कुछ ही घण्टे बचे थे, उसी समय दैवयोगसे श्रीरघुनाथदासके गुरु तथा कुल-पुरोहित श्रीयदुनन्दनाचार्य उनके घर आये। श्रीयदुनन्दनाचार्य श्रीवासुदेव दत्तके शिष्य थे। जब श्रीयदुनन्दनाचार्य आकर श्रीरघुनाथदासके आङ्गनमें उपस्थित हुए तो श्रीरघुनाथदासने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया तथा उनसे असमयमें आनेका कारण पूछा। श्रीयदुनन्दनाचार्य बोले—"मेरा एक शिष्य ठाकुरजीकी सेवा करता है। परन्तु किसी कारणसे वह सेवा छोड़कर चला गया है। अतः तुम जाकर किसी भी प्रकारसे उस समझा-बुझाकर ले आओ, क्योंकि दूसरा कोई भी पुजारी नहीं है।" ऐसा कहकर श्रीयदुनन्दनाचार्य श्रीरघुनाथदासको अपने साथ लेकर चल पड़े। रात्रिका अन्तिम प्रहर होनेके कारण प्रहरी भी गहरी नींदमें सो रहे थे। श्रीयदुनन्दनाचार्यका घर श्रीरघुनाथदासजीके घरकी पूर्व दिशामें था। परस्पर वार्तालाप करते हुए वे दोनों आचार्यके घरकी ओर चले जा रहे थे। मार्गमें श्रीरघुनाथदासने उनसे कहा—"गुरुदेव! मैं किसी भी प्रकारसे पुजारीको समझा-बुझाकर आपके घर भेजता हूँ। आप निश्चिन्त होकर अपने घर जाइये तथा मुझे उस ब्राह्मणके पास जानेकी आज्ञा दीजिए।"

इस प्रकार श्रीरघुनाथदासने बहुत ही चतुरायीसे श्रीयदुनन्दनाचार्यसे आज्ञा माँगकर निश्चय किया—"इस समय मेरे साथ कोई भी प्रहरी या सेवक नहीं है। अतः इस समय भागनेका अच्छा अवसर है।" ऐसा विचारकर श्रीरघुनाथदास वहाँसे पूर्वकी ओर चल पड़े। कभी-कभी वे पीछेकी ओर मुड़कर देखते भी जा रहे थे, परन्तु उन्हें अपने पीछे कोई भी दिखाई नहीं दे

रहा था। अतः वे निश्चिन्त होकर श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीचरणकमलोंका स्मरण करते हुए मुख्य मार्गको छोड़कर वन-मार्गपर तीव्र गतिसे जाने लगे। वे गाँवोंसे होकर जानेवाले पथका त्यागकर वनोंसे होकर जा रहे थे। एक ही दिनमें उन्होंने पन्द्रह कोसका मार्ग तय कर लिया तथा सन्ध्याके समय एक ग्वालेकी गौशालामें विश्राम किया। उन्हें भूखा-प्यासा देखकर ग्वालेने उन्हें दूध दिया। दूध पीकर वे रात बितानेके लिए वहीं सो गये।

उधर प्रातःकाल मण्डपमें श्रीरघुनाथदासको न पाकर प्रहरी उनके गुरु श्रीयदुनन्दनाचार्यके पास जाकर उनके विषयमें पूछने लगे। वे बोले—"रघुनाथ तो मुझसे आज्ञा लेकर घर चला गया था।" अब तो जङ्गलकी आगकी भाँति चारों ओर समाचार फैल गया कि रघुनाथ घर छोड़कर चला गया है। कुछ विचार करते हुए उनके पिताने प्रहरियोंसे कहा—"यहाँसे बहुतसे गौड़ीय-भक्त श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनोंके लिए नीलाचल गये हैं। अवश्य ही रघुनाथ भी उनके साथ ही गया होगा। अभी वे लोग मार्गमें ही होंगे। अतः तुम लोग तुरन्त जाओ तथा रघुनाथको पकड़कर ले आओ।" ऐसा कहकर उन्होंने अति विनयपूर्वक श्रीशिवानन्दसेनके लिए एक पत्र भी लिखा कि आप कृपया मेरे पुत्रको समझा-बुझाकर घर भेज दीजिए। इस प्रकार दस प्रहरी तीव्रगामी घोड़ोंपर सवार होकर श्रीरघुनाथदासको ढूँढ़नेके लिये निकल पड़े तथा झाँकरा नामक स्थानपर उन्हें वैष्णव-मण्डली मिल गयी। उन्होंने श्रीशिवानन्दको पत्र दिया तथा श्रीरघुनाथदासके विषयमें पूछा। श्रीशिवानन्दने कहा कि रघुनाथ हमारे साथ नहीं आया है। यह सुनकर प्रहरी वापस लौट आये। अब तो श्रीरघुनाथदासके माता-पिता बहुत दुःखी हुए एवं उनके विषयमें अत्यन्त ही चिन्तित हो गये।

उधर प्रातःकाल श्रीरघुनाथदास उठकर पूर्व-दिशाकी ओर न चलकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। छत्रभोग-नामक स्थानको पार करनेके पश्चात् श्रीरघुनाथदास प्रशस्त मार्गको छोड़कर छोटे-छाटे गाँवोंसे होते हुए आगे बढ़ने लगे। बिना खाये-पिये वे सारा दिन चलते रहे, परन्तु महाप्रभुके दर्शनोंकी लालसासे भूख-प्यास उनके गमनमें लेशमात्र भी बाधा नहीं पहुँचा पा रही थी। कभी चने आदि मिल जाते तो वे उन्हें ही चबा लेते, कभी कोई पकी हुई खानेकी वस्तु मिल जाती, तो वही खा लेते अथवा यदि कभी कोई दूध दे देता तो उसीको पीकर वे अपने प्राण धारण कर रहे थे। इस प्रकार चलते हुए मात्र बारह दिनोंमें ही वे नीलाचल पहुँच गये। बारह दिनोंकी इस यात्रामें उन्होंने केवल तीन दिन ही भोजन किया। जब वे नीलाचल पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनोंके लिए उनके निकट उपस्थित हुए, उस समय महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तोंके साथ बैठे हुए थे। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुको दूरसे ही साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। उन्हें प्रणाम करते हुए देखकर मुकुन्द दत्तने महाप्रभुसे कहा—"प्रभो! रघुनाथ आया है।" सुनकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथदासकी ओर देखकर कहा—"रघुनाथ! इधर आओ।" यह सुनकर श्रीरघुनाथदास आकर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़े तथा भावविह्वल होकर क्रन्दन करने लगे। उन्हें इस प्रकार भाव-विभोर देखकर महाप्रभुने उन्हें उठाया तथा अपने गलेसे लगा लिया। महाप्रभुका स्पर्श पाते ही श्रीरघुनाथदासके शरीरमें सात्विक भाव प्रकट हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तोंकी चरण-वन्दना की। श्रीरघुनाथदासपर महाप्रभुकी कृपा देखकर सभी भक्तोंने उन्हें आलिङ्गन किया।

तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु कहने लगे—"रघुनाथ! कृष्ण-कृपा अति बलवान् है। कृष्णकी कृपाने ही तुम्हें विषयरूपी विष्ठाके गड्ढेसे बाहर निकाला है।" यह सुनकर रघुनाथदास मन-ही-मन कहने लगे—"मैं कृष्णको नहीं जानता। मैं तो यही जानता हूँ कि

आपकी कृपा ही मुझे संसार-कूपसे निकालकर आपके श्रीचरणकमलोंमें लेकर आयी है।" श्रीमन्महाप्रभु बोले—"तुम्हारे पिता तथा ताउ मेरे नाना श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीके सम्बन्धसे मेरे नाना लगते हैं। तुम्हारे पिता तथा ताउ दोनों ही श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीके छोटे भाई-रूपी दास हैं, इसीलिए मैं उनके विषयमें परिहास कर रहा हूँ। तुम्हारे पिता-ताउ विषयविष्ठा-गड्ढेके कीड़े हैं। वे विषयरूपी विषकी भयङ्कर पीड़ाको भी परम सुख मानते हैं। [जड़ इन्द्रियोंके द्वारा भोगे जानेवाले विषय मलके गड्ढेके समान हैं तथा विषयोंमें आविष्ट जीव अत्यन्त ही घृणित मलके कीड़ेके समान है जो उस गड्ढेसे बाहर निकलना ही नहीं चाहता। यदि उस कीड़ेको उस मलके गड्ढेसे बाहर भी निकाल दिया जाये तो वह पुनः उस गड्ढेकी ओर ही जाता है।] यद्यपि वे दोनों लोग ब्राह्मणोंकी बहुत सेवा करते हैं, तथापि वे शुद्ध-वैष्णव नहीं हैं, वे मात्र वैष्णवप्राय हैं। विषयोंका स्वभाव ही ऐसा है कि वे व्यक्तिको सम्पूर्णरूपसे अन्धा बना देते हैं तथा उससे वही कार्य करवाते हैं, जिनसे वह बन्धनमें फँस जाता है। ऐसे विषयोंसे कृष्णने तुम्हारा उद्धार किया है। इसलिए कृष्णकी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है!"

बारह दिनोंकी कठिन यात्राके कारण श्रीरघुनाथदासका शरीर कुछ दुर्बल तथा मलिन हो गया था, जिसे देखकर महाप्रभुका चित्त द्रवित हो गया तथा वे अपने प्रिय श्रीस्वरूप दामोदरसे बोले—"दामोदर! इस रघुनाथको आपको सौंप रहा हूँ। आप इसे अपने पुत्र एवं सेवकके रूपमें स्वीकार कीजिए। इस समय मेरे पास तीन रघु हैं। इसलिए इसका नाम मैं रख रहा हूँ—'स्वरूपेर रघु (अर्थात् स्वरूपका रघुनाथ)'। आजसे सभी लोग इसे इसी नामसे पुकारेंगे।" ऐसा कहकर महाप्रभुने श्रीरघुनाथदासका हाथ श्रीस्वरूप दामोदरके हाथोंमें समर्पित कर दिया। श्रीस्वरूप दामोदरने महाप्रभुका आदेश स्वीकार करते हुए श्रीरघुनाथदासको आलिङ्गन कर लिया।

क्रमशः

बारह दिनोंकी कठिन यात्राके कारण श्रीरघुनाथदासका शरीर कुछ दुर्बल तथा मलिन हो गया था, जिसे देखकर महाप्रभुका चित्त द्रवित हो गया तथा वे अपने प्रिय श्रीस्वरूप दामोदरसे बोले—"दामोदर! इस रघुनाथको आपको सौंप रहा हूँ। आप इसे अपने पुत्र एवं सेवकके रूपमें स्वीकार कीजिए। इस समय मेरे पास तीन रघु हैं। इसलिए इसका नाम मैं रख रहा हूँ—'स्वरूपेर रघु (अर्थात् स्वरूपका रघुनाथ)'। आजसे सभी लोग इसे इसी नामसे पुकारेंगे।"

श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी
द्वारा स्वयं एवं उनके कृपाशीर्वाद और प्रेरणासे
भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

१.	**श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, (उ.प्र.)	☎ ९७१९०७०९३९
२.	**श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, (उ.प्र.)	☎ ९२१९४७८००१
३.	**श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, (प.बं.)	☎ ९३३३२२२७७५
४.	**श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, (उ.प्र.)	☎ ९९१७६४३९७१
५.	**श्रीगोपीनाथ-भवन,** इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, (उ.प्र.)	☎ ९६३४५६३७३९
६.	**श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, (उ.प्र.)	☎ (०५६५)२८१५६६८
७.	**श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली	☎ (०११)२५५३३२६८
८.	**श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता-९	☎ ९७७६२३८३२८
९.	**जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा	☎ ९७७६२३८३२८
१०.	**श्रीराधे-कुञ्ज**, आनन्द-वाटिकाके समीप, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन (उ.प्र.)	☎ ९७७६२३८३२८
११.	**श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, प्लाट-३, सेक्टर-२१-सी, फरीदाबाद, हरियाणा	☎ ९९११२८३८६९
१२.	**श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, हेसेरघट्टा, नृत्यग्राम कुटीरके पास, बङ्गलोर	☎ (०८०)२८४६६७६०
१३.	**श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, रूपनगर एन्क्लेव, जम्मू	☎ ९९०६९०४८०९
१४.	**श्रीराधाविनोदबिहारी गौड़ीय मठ**, Q-२९, सेक्टर-१२, नोएडा (उ.प्र.)	☎ ९६५०८२४४४२
१५.	**आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन (उ.प्र.)	☎ (०५६५)२५४०८४९
१६.	**श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.)	☎ ८६२९९११४००
१७.	**श्रीश्रीराधामदनमोहन मन्दिर**, जयपुर, राजस्थान	☎ ७२२९८८२२२८

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2025-2027
DATE OF PUBLICATION - 12 AUGUST 2025

पारमार्थिक सचित्र हिन्दी पत्रिका श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सदस्य बनें

एक वर्षीय (1yr) –	३०० रु॰
पञ्च वर्षीय (5yr) –	१,२०० रु॰
आजीवन (Lifetime) –	७,५०० रु॰ [७५० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]
संरक्षक (Patron) –	१०,००० रु॰ [१००० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

Account name:	SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. :	037201000010611
IFSC code:	IOBA0000372
Bank:	Indian Overseas bank

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 9818779345 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

सम्पर्क-सूत्र

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ.प्र.)

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध-समूह एवं विषय-वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –

e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाकी सदस्यता-शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –

e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929